[illegible]

सौम्यमूर्ति श्री दिनेशभाई कान्तीलाल कोठारी [बम्बई]

के सौजन्य से प्रकाशित

आ रा ध ना

चैत्यवंदन सूत्र प्रकाश

[illegible]

प. पू. आचार्य श्री विजयभुवनभानु सूरीश्वरजी

[illegible]

[illegible]

[illegible]

प्रकाशक :
'दिव्यदर्शन साहित्य प्रकाशन समिति'
कुमारपाल वि. शाह,
६८, गुलालवाडी,
बम्बई–४०० ००४.

: संपादक :

पूज्य मुनिश्री (पद्मसेन) विजयश्री महाराज

प्रेरणाश्रोत :

सुश्राविका श्रीमती विद्याबेन कांतिलाल कोठारी
धर्मप्रेमी श्री कांतिलाल मणिलाल कोठारी, बम्बई

मूल्य :

पांच रुपये

मुद्रक :
संगीता प्रिंटींग प्रेस,
५, कपूर काटेज, छठवां रास्ता,
सांताक्रुझ (पूर्व), बम्बई–४०० ०५५.

❀ वन्दना सौरभ ❀

अपनी
आत्मा के कल्याण के लिए
तथा हमें
अक्षय, अनन्त, अव्याबाध रुप
मोक्षसुख प्राप्त हो
इस उद्देश्य से
अर्थ का प्रकाश करनेवाले
श्री अरिहंत भगवन्तों के
उसी प्रकार
इन गहन अर्थों को
सूत्र में सुग्रथित करनेवाले
श्री गणधर भगवन्तों के
हम अत्यन्त ऋणी हैं,
इन परम उपकारी भगवन्तो को
हमारी भावभीनी त्रिविध चन्दना.

—दिनेशभाई कान्तिलाल कोठारी
ताडदेव रोड, बम्बई-३४.

– न्यायविशारद, वर्धमान तपोनिधि –

आचार्यश्री विजयभुवनभानुसूरिश्वरजी महाराज के

❀ प्रेरक व बोधक, तात्त्विक एवं तार्किक साहित्य ❀

पुस्तक का नाम	भाषा	मूल्य
परमतेज भाग-१	गुजराती	९–००
परमतेज भाग-२	,,	१५–००
उच्च प्रकाशने पंथे	,,	७–५०
आराधना (चैत्यवंदन सूत्र प्रकाश)	,,	५–००
मदनरेखा	,,	३–००
अमीचन्दनी अमीदृष्टि	,,	४–००
ध्यानशतक	,,	५–००
नवपद प्रकाश (अरिहंत)	,,	१०–००
ललित विस्तरा	हिन्दी	१२–००
ध्यानशतक	,,	५–००
प्रतिक्रमण सूत्र चित्र आलबम	,,	१२–००
गणधरवाद	,,	१–५०
शास्त्रवार्ता समुच्चय	,,	२५–००
आराधना	,,	५–००
जैनधर्म परिचय	,,	७–००
आहार शुद्धि प्रकाश	,,	५–००
मदनरेखा	,,	२–००

❀ प्राप्तिस्थान ❀

'दिव्यदर्शन'

C/o. कुमारपाल वि. शाह

६८, गुलालवाड़ी, तिसरा मजला, बम्बई-४०० ००४.

'आराधना' पुस्तक-प्रकाशन के प्रेरणास्रोत

धर्मप्रेमी श्रीमती विद्याबेन कांतीलाल कोठारी

सौजन्यमूर्ति श्री कांतीलाल मणीलाल कोठारी अहमदाबाद

प्रकाशकीय निवेदन

सिद्धि के लिए साधन और साधना दोनों अनिवार्य हैं। साधनार्थ ज्ञान और क्रिया दोनों आवश्यक हैं। ज्ञानयुक्त क्रिया मोक्षमार्ग है। मोक्ष के निमित्त ज्ञान और क्रिया आवश्यक ही नहीं, अपरिहार्य है।

ज्ञान अर्थात् श्रुतज्ञान। इस श्रुतज्ञान के विषय में उल्लेख है, 'श्री अरिहंत भगवान् अर्थ का कथन करते हैं। गणधर भगवान भव्य आत्माओं के कल्याण के उद्देश्य से कुशलतापूर्वक उस अर्थ की रचना सूत्र रूप में करते हैं। फलत श्रुत प्रवर्तित होता है।'

श्री भद्रबाहु स्वामी ने श्रुतज्ञान का परिचय देते हुए कहा है कि "सामायिक से लेकर बिंदुसार (चौदहवें पूर्व) तक श्रुतज्ञान है। इस श्रुतज्ञान का सार चारित्र है। चारित्र का सार या निचोड निर्वाण (मोक्षसुख) है।" पूज्य तीर्थंकरों ने ऐसे अर्थ की प्ररूपणा की जो भव्य जीवों की निर्वाण प्राप्ति में साधनभूत हो। इसीलिए वे हमारे सर्वप्रथम उपकारी हैं। गणधर भगवन्तों ने उस अर्थ को सूत्ररूप में हमें प्रदान किया। श्रीगुरु भगवन्तों ने हमें उन सूत्रों का अर्थ, भावार्थ तथा महत्व समझाया। अत वे भी हमारे उपकारी हैं। इन उपकारी महापुरुषों की वन्दना, स्तुति, पूजा आदि करने में अपनी आत्मा का ही कल्याण है।

श्रावक के लिए प्रतिदिन जिनपूजा, दर्शन, वंदन, चैत्य वंदन,

गुरुवंदन और सामायिक आदि का अनुष्ठान शुद्ध विधि तथा शुभभाव पूर्वक करना आवश्यक है। ज्ञानियों का कथन है कि भावपूर्वक की गई ये क्रियाएं भव का नाश करनेवाली हैं। उपर्युक्त क्रियाओं के लिए यह पुस्तक भी उपयोगी आधार रूप तथा उपयुक्त आलंबनरूप सिद्ध होगी।

इस उपयोगी पुस्तक के पृष्ठो में आगम सूत्रो के आकंठ अभ्यासी, तप एवं शुद्ध क्रिया द्वारा उस श्रुतज्ञान को स्वजीवन में चरितार्थ करने वाले पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद् विजय भुवनभानु सूरीश्वर जी महाराज ने अभ्यासपूर्ण मननीय विवेचन प्रस्तुत किया है। विद्यालयो और महाविद्यालयो के छात्र ही नही, किंतु पढ़ने और समझने में समर्थ सभी व्यक्ति इन निर्वाणप्रद सूत्रों का गहन एवं गंभीर रहस्य समझ सकें, ऐसी शैली से उनका अर्थ और भावार्थ स्पष्ट किया गया है। इसके साथ साथ गुरुवंदन, चैत्यवंदन, सामायिक, लेने और पारने की विधि, सामायिक का महत्व और फल पर प्रकाश डाला गया है। इन विषयो के अतिरिक्त इस पुस्तक में पूर्वाचार्यो द्वारा रचित भावपूर्ण स्तवन, चैत्यवंदन, सज्झाय, थोय और स्तुतियो का संकलन भी किया गया है।

इस पुस्तक के प्रकाशन का एक विशेष उद्देश्य है। मैट्रिक--कालेज के जैन युवको के जीवन निर्माणार्थ गत १७ वर्ष से जैन धार्मिक शिक्षण शिविरो का आयोजन होता आ रहा है। इन शिविरो में पूज्यपाद आचार्य श्रीविजय भुवनभानु सूरीश्वर जी महाराज पांच पांच विषयों की तार्किक और रहस्यपूर्ण वाचनाएँ देते हैं। शिविर में प्रविष्ट होनेवाले युवकों को २१ दिन की अवधि में सामायिक, गुरुवंदन तथा चैत्यवंदन के सूत्र स्तवन, स्तुतियां, सज्झाय, थोय आदि अवश्यमेव कंठस्थ करने होते हैं। इन सूत्रो उनके अर्थ, भावार्थ, विधि, स्तवन आदि के संकलन की पाठ्यपुस्तक का अभाव था। पूज्यपाद की प्रशस्त लेखिनी द्वारा ग्रथित यह पुस्तक उस अभाव की पूर्ति करती है। वैसे तो यह पुस्तक शिविरार्थियो के लिए लिखी

(१०)

अंगूठे अमृत वसे लब्धितणा भंडार,
श्री गुरु गौतम समरीये वाञ्छितफल दातार।

(११)

अन्यथा शरण नास्ति त्वमेव शरण मम।
तस्मात् कारुण्यभावेन रक्ष रक्ष जिनेश्वर॥

(१२)

सेवामाटे सुरनगर थी देवनो संघ आवे,
भक्ति भावे सुर गिरि धरे, स्नात्र पूजा रचावे।
नाट्यारम्भे नमन करी ने पूर्ण आनन्द पावे,
सेवामारी वीर प्रभु तणी को नवि चित्त लावे॥

(१३)

अपाराम्भोनिधि जल विषे डूबतो हु जिनेन्द्र,
तारो मारो सुखकर मल्यो धर्म पाम्यो मुनीन्द्र।
त्यागो थानो धनि जन करे तोय ते ना हु छोडु,
नित्य धर्म प्रभु तुज कने भक्तिथी हाथ जोडु॥



श्री नवकार महामंत्र

नमो अरिहंताणं.

नमो सिद्धाणं.

नमो आयरियाणं.

नमो उवज्झायाणं.

नमो लोए सव्वसाहूणं.

एसो पंच नमुक्कारो.

सव्व पावप्पणासणो.

मंगलाणं च सव्वेसिं.

पढमं हवइ मंगलं।



शब्दार्थ

नमो–नमस्कार करता हूँ,
अरिहंताण–अरिहंतो को
सिद्धाण–सिद्धो को
आयरियाण–आचार्यो को
उवज्झायाण–उपाध्यायों को
लोए–लोक मे (ढाई द्वीप में स्थित)
सव्वसाहूण–सब साधुओ को
एसो–यह
पच नमुक्कारो–पाच को किया नमस्कार
सव्व पाव–सब पापों का
प्पणासणो–नाश करनेवाला
मगलाण च–और मगलों में
सव्वेसि–सब
पढम–प्रथम
हवइ–है
मगल–मगल

भावार्थ

अरिहंत भगवतों को नमस्कार करता हूँ। सिद्ध भगवतो को नमस्कार करता हूँ। आचार्य भगवतों को नमस्कार करता हूँ। मनुष्य लोक मे रहे हुए सभी साधु भगवतों को नमस्कार करता हूँ।

यह पचनमस्कार सभी पापों का नाश करनेवाला है तथा समस्त मगलों में सर्वश्रेष्ठ मगल है।

सूत्र परिचय

यह सूत्र महाप्रभावशाली है। क्योंकि :-

(१) प्रत्येक जैनशास्त्र का पठन करते समय प्रारंभ में इसे याद करना पड़ता है।

(२) समस्त मंत्रों में उच्चतम होने के कारण यह महामंत्र है।

(३) इसका एक बार भी जाप करने से ५०० सागरोपम की पापकर्मों की कालस्थिति घट जाती है।

(४) परलोकगमन के समय जिसके हृदय में मैत्री भाव और नमस्कार महामंत्र होते हैं, उसे सद्‌गति है। प्राप्त होती है। इत्यादि।

इस सूत्र में 'नमो' पद्से पंचपरमेष्ठी को नमस्कार किया गया है। परमेष्ठी को नमस्कार अर्थात् नमन करते समय हृदय में नम्रता धारण करके परमेष्ठी को भक्तिपूर्वक प्रतिष्ठित करना चाहिए। परमेष्ठी अर्थात् परम उच्च स्थानपर विराजमान। ये पांच परमेष्ठी प्रतिज्ञापूर्वक सब पापों का त्याग करनेवाले होते है। उनके नाम हैं अरिहंत, सिद्ध, आचार्य. उपाध्याय और साधु। इन्हें भावपूर्वक किया गया नमस्कार सब पापोंका अत्यन्त नाश करता है। यह श्रेष्ठ मंगल है।

इनमें अरिहंत अर्थात् आठ महा प्रतिहार्य की शोभा के योग्य वित-राग सर्वज्ञ तीर्थंकर भगवान हैं जो धर्म, शासन और संघ की स्थापना करते है।

सिद्ध अर्थात् सब कर्मों का क्षय करके मोक्ष को प्राप्त करनेवाली आत्माएँ (संसार के जन्ममरण के चक्र से मुक्त)। आचार्य अर्थात् पञ्चाचार का स्वयं पालन करते हुए उसका प्रचार करनेवाले। उपाध्याय

चार शरण

चत्तारि सरणं पवज्जामि,
अरिहंते सरणं पवज्जामि,
साहू सरणं पवज्जामि,
केवलि पण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि.

ये चार शरण है
अरिहंतो की शरण लेता हू, सिद्धो की शरण लेता हू
साधुओं की शरण लेता हू, केवलि प्रणीत धर्म की शरण लेता हू



श्री नवपद स्तुति

[राग–मन्दाक्रान्ता]

श्री अरिहतो सकलहितदा उच्च पुण्योपकारा,
सिद्धो सर्वे सुगतिपुरीना गामीने ध्रुवतारा १
आचार्यो छे जिनधरमना दक्ष व्यापारी शूरा,
उपाध्यायो गणधरतणा सूत्रदाने चकोरा २
साधु अन्तर अरिसमूह ने विक्रमी थई य दहे,
दर्शनज्ञान हृदयमलने मोह अंधार खडे ३
चारित्रे छे अध रहित हो जिंदगी जीव ठारे,
नवपदमांहे अनुप तप छे जे समाधि प्रसारे ४
वन्दु भावे नवपद सदा पामवा आत्मशुद्धि,
आलबन हो मुज हृदयमा यो सदा स्वच्छ बुद्धि ५

रचयिता–आ. श्री विजय भुवनभानु सूरिजी



भावना

शिवमस्तु सर्वजगतः, परहितनिरता भवन्तु भूतगणाः।
दोषाः प्रयान्तुं नाशं, सर्वत्र सुखी भवतु लोकः ॥

सारे जगत् का कल्याण हो, प्राणी दूसरों का कल्याण करने में तत्पर रहें, दोषों का नाश हो, सभी जीव सर्वत्र सुखी हों।



क्षमापना

खामेमि सव्वजीवे, सव्वे जीवाखमंतु मे।
मित्ती मे सव्वभूयेसु वेंर मज्झ न केणइ ॥

मैं सब जीवों से क्षमा मांगता हूं, समस्त जीव मुझे क्षमा प्रदान करें। मेरी मैत्री प्राणीमात्र के साथ है। किसी के साथ भी मेरा बैरभाव नहीं।



जैनशासन

सर्व मङ्गल माङ्गल्यं, सर्व कल्याणकारणं,
प्रधानं सर्वधर्माणां, जैन जयति शासनम्।

सर्व मंगलों में माङ्गल्यरुप, सर्व कल्याणों का कारण,

समस्त धर्मों में प्रधान (ऐसा) जैन शासन जय प्राप्त करता है। (विजयी हो रहा है.)



प्रभु के सन्मुख बोलने योग्य स्तुतियां

(१)

पूर्णानन्दमय महोदयमय कैवल्यचिद्दृङ्मय,
रुपातीतमय स्वरुपरमण स्वाभाविक श्रीमय ।
ज्ञानोद्योतमय कृपारसमय स्याद्वाद विद्यालय,
श्री सिद्धाचल तीर्थराजमनिश वन्देऽहमादीश्वरम् ॥

(२)

श्री आदीश्वर शान्ति नेमिजिन ने श्री पार्श्व वीर प्रभो,
ए पाचे जिनराज आज प्रणमु हेते धरी हे विभो ।
कल्याणे कमला सदैव विमला वृद्धि पमाडो अति ।
एवा गौतम स्वामी लब्धि भरिया आपो सदा सन्मति ॥

(३)

आव्यो शरणे तुमारा जिनवर करजो आश पूरी अमारी,
नाव्यो भवपार मारो तुम बिन जगमा सार ले कोण मारी ।
गायो जिनराज आजे हरख अधिकथी परम आन्दकारी,
पायो तुम दर्श, नासे भवभय-भ्रमणा नाथ सर्वे अमारी ॥

(४)

ताराथी न समर्थ अन्य दीननो उद्धारनारो प्रभु,
माराथी नहि अन्य पात्र जगमा जोता जडे हे विभु ।
मुक्ति मगलस्थान ! तोय मुजने इच्छा न लक्ष्मी तणी,
आपो सम्यगरत्न श्याम जीवने तो तृप्ति थाये घणी ॥

(५)

हे प्रभो आनन्ददाता ज्ञान हम को दीजिए,
शीघ्र सारे दुर्गुणों को दूर हम से कीजिए।
लीजिए हमको शरण में हम सदाचारी बनें,
ब्रम्हचारी धर्मरक्षक वीरव्रतधारी बनें ॥

(६)

वीतराग हे जिनराज ! तुज पद पद्मसेवा मुज हो जो,
भवभव विषे अनिमेष नयने आपनुं दर्शन थजो।
दयासिंधु विश्वबंधु दिव्य दृष्टि आपजो,
करी आप सम सेवक तणा संसार बंधन कापजो ॥

(७)

बहुकाल आ संसार सागर मां प्रभु हुं संचर्यो,
थइ पुण्यराशि एकठी त्यारे जिनेश्वर तुं मल्यो।
पण पापकर्म भरेल में सेवा सरस नव आदरी,
शुभयोग ने पाम्या छतां में मूर्खता बहुए करी ॥

(८)

भवजलधि मांथी हे प्रभो ! करुणा करीने तारजो,
ने निर्गुणी ने शिवनगरनां शुभसदन मां धारजो।
आ गुणी आ निर्गुण एम भेद मोटा नव करे,
शशि सूर्य मेघ परे दयाल सर्वना दुख दुर हरे ॥

(९)

हे नाथ ! आ संसार सागर डुबता एवा मने,
मुक्तिपुरीमां लइ जवाने जहाज रूपे छो तमे।
शिवरमणि ना शुभ संग थी अभिराम एवा हे प्रभो !
मुज सर्व सुखनुं मुख्य कारण छो तमे नित्ये प्रभु ॥

गई है। परन्तु प्रारम्भ से अभ्यास करने के अभिलाषी आराधको, पाठशालाओ के छात्र छात्राओ तथा इन क्रियाओ मे रसरुचि रखनेवालो के लिए भी यह उतनी ही उपयोगी है।

इस पाठ्यपुस्तक की विशिष्ठता और विमलता यह है कि पूज्यपाद आचार्य महाराज ने अपनी विविध सम्यक् शासन सेवाओ के उत्तरदायित्व और व्यस्तता से समय निकालकर सूत्रो का सविस्तर अर्थ और भावार्थ लिख दिया है। उनकी अनुभवपूर्ण लेखनी के स्पर्श से यह पाठ्यपुस्तक प्रामाणिक बन गया है। उनके श्रम और उपकार के प्रति हम अतीव ऋणी है।

इस अत्यधिक उपयोगी पुस्तक के हिन्दी-अनुवाद-की परम आवश्यकता थी। हिन्दी राष्ट्रभाषा है और हिन्दी भाषी राज्यो में श्वेताम्बर मूर्तिपूजक जैनो की सख्या काफी है। वहा के युवको को भी पुस्तक का लाभ प्राप्त हो, इस उद्देश्य से हिन्दी सस्करण प्रकाशित किया जा रहा है। इस पुस्तक का हिन्दी अनुवाद अवकाश प्राप्त-प्रोफेसर पृथ्वीराजजी जैन ने किया है। परमपूज्य मुनिश्री जयसुंदर विजयजी महाराज एव परमपूज्य मुनिश्री पदमसेन विजयजी महाराज का मार्गदर्शन भी वदनीय है। हम उनके श्रम और योगदान के प्रति हार्दिक आभार प्रगट करते हैं।

लि

दिव्यदर्शन साहित्य प्रकाशन समिति

कुमारपाल वि शाह

बम्बई



हमारी दैनिक मंगल प्रार्थना

❀ वंदना

नमो अरिहंताणं
नमो सिद्धाणं
नमो आयरियाणं
नमो उवज्झायाणं
नमो लोए सव्वसाहूणं
एसो पंच नमुक्कारो, सव्वपावप्पणासणो
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ।

अरिहंतों को नमस्कार करता हूं.
सिद्धों को नमस्कार करता हूं.
आचार्यों को नमस्कार करता हूं.
उपाध्यायों को नमस्कार करता हूं.

लोक में विराजमान सब साधुओं को नमस्कार करता हूँ.

यह पंचनमस्कार समस्त पापों का नाश करनेवाला है तथा सभी मंगलों में प्रथम मंगल है ।



अरिहंता मे शरणं

सिद्धा मे शरणं

साहू मे शरणं

केवलिपण्णत्तो धम्मो मे शरणं

गरीहामि सव्वाइं दुक्कडाइं

अणमोएमि सव्वेसिं सुक्कडाइं

अरिहंत भगवंतों की शरण ग्रहण करता हूं,

सिद्ध भगवंतो की शरण ग्रहण करता हूं,

साधु भगवंतो की शरण ग्रहण करता हूं,

केवली भगवंतों द्वारा प्रकाशित धर्म की शरण ग्रहण करता हूं,

सभी दुष्कृत्यों की निंदा करता हूं,

सभी सुकृत्यों की मैं अनुमोदना करता हूं।



चार मंगल

चत्तारि मंगलं
अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं,
साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं,

ये चार मंगल हैं।
अरिहंत मंगल हैं, सिद्ध मंगल हैं.
साधु मंगल हैं, केवलिप्रणीत धर्म मंगल है।



चार लोकोत्तम

चत्तारि लोगुत्तमा
अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा,
साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो,

ये चार लोकोत्तम हैं,
अरिहंत लोकोत्तम हैं, सिद्ध लोकोत्तम हैं,
साधु लोकोत्तम हैं, केवलिप्रणीत धर्म लोकोत्तम है।



अर्थात् जिनागम का अध्यापन करानेवाले। साधु अर्थात् ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूप मोक्षमार्ग की ही साधना करनेवाले।

पच परमेष्ठी के इस नमस्कार मे उनके गुणो का सपूर्ण अनुमोदन होता है तथा हिंसादि पापो की घृणा होती है।

इसका फल क्या होता है? समस्त रागादि पापो का नाश।

इसका प्रभाव और इसकी महिमा? समस्त मगलो में श्रेष्ठ मगल।

अत प्रत्येक शुभकार्य के प्रारभ में नमस्कार मन्त्र का स्मरण करना चाहिए।



पंचिंदिअ (गुरुस्थापना) सूत्र

पंचिंदिअ-संवरणो,
तह नवविह--बंभचेर--गुत्ति-धरो
चउव्विह-कसाय-मुक्को,
इअ अट्ठारस-गुणेहिं-संजुत्तो ॥१॥
पंच-महव्वय-जुत्तो,
पंचविहायार-पालण-समत्थो,
पंच-समिओ ति--गुत्तो,
छत्तीस--गुणो गुरु मज्झ ॥२॥

शब्दार्थ

पचिंदिय–पाच इन्द्रियों का
सवरणो–निग्रह करनेवाले
तह–तथा
नवविह–नौ प्रकार की
बभचेर–ब्रह्मचर्य की
गुत्ति–गुप्ति या वाढ
धरो–धारण करनेवाले
चउव्विह–चार प्रकार के
कसाय–कषाय से (क्रोध, मान, माया, लोभ)
मुक्को–मुक्त
इअ–इसप्रकार के
अट्ठारस गुणेहिं–अठारह गुणो से
सजुत्तो–सयुक्त
पचमहव्वयजुत्तो–पाच महाव्रत से युक्त
पचविहायार पालण समत्थो–पाच प्रकार के आचार के पालन में क्षम
पचसमिओ–पाच समिति के धारक
तिगुत्तो–तीन गुप्ति के धारक
छत्तीस गुणो–इन ३६ गुणोंवाले
गुरु मज्झ–मेरे गुरु हैं।



भावार्थ

पांच इन्द्रियों के विषयों को वश में करनेवाले, नौ प्रकार की वाड या मर्यादा द्वारा ब्रह्मचर्य के पालक, चार प्रकार के कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ) से मुक्त, इसप्रकार १८ गुणोंवाले, अहिंसादि पांच महाव्रतों का पालन करनेवाले (ज्ञानाचार आदि) पांच प्रकार के आचार के पालन में समर्थ (ईर्या समिति आदि) पांच समिति एवं (मनोगुप्ति आदि) तीन गुप्ति के धारक—इसप्रकार कुल ३६ गुणो से युक्त मेरे गुरु हैं।



सूत्र परिचय

सामायिक, प्रतिक्रमण, पौषध, उपधान आदि धर्मक्रियायें अथवा अनुष्ठान हैं। इन्हें गुरु की उपस्थिति में, गुरु की आज्ञा से तथा गुरु के प्रति विनय भाव को दृष्टि सन्मुख रखते हुए ही करना चाहिये। गुरु की अनुपस्थिति में धर्म क्रियाओं को छोड़ना नहीं चाहिए, क्योंकि आत्म-हित के लिए यही समर्थ होती हैं। इसीलिए शास्त्रकार 'गुरुविरहम्मी गुरुठवणा....' इस सूत्र द्वारा गुरु भगवन्तों का योग न मिलने पर ज्ञान, दर्शन, चारित्र के किसी भी उपकरण में गुरु की स्थापना करने का उल्लेख करते हैं। ऐसा करके यह समझना चाहिए कि स्थापना गुरु साक्षात् गुरु रूप विराजमान है। उनका आदेश प्राप्तकर तथा उचित विनय भाव-पूर्वक धर्मानुष्ठान अथवा धर्मक्रिया करनी चाहिए।

एक चौकीपर धर्मपुस्तक अथवा नवकारवाली रखकर उसमें गुरु के आमंत्रण, गुरु के आगमन स्थापन करने के उद्देश्य से उसकी ओर हाथ

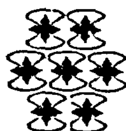
सीधा करके नवकार मंत्र तथा पंचिंदिय सूत्र बोलने चाहिए। इससे गुरु की स्थापना होती है। क्योंकि इस सूत्र का उच्चारण गुरु स्थापना के निमित्त होता है, अत इसे 'गुरु स्थापना सूत्र' भी कहते हैं।

इस सूत्र में गुरु के १८ निवृत्ति धर्मों तथा १८ प्रवृत्ति धर्मों, कुल ३६ गुणों का निर्देश है। [१] १८-निवृत्ति धर्म ये हैं-पाच इन्द्रियों का सवर अर्थात पाचों इन्द्रियों को दुष्ट विषयों में प्रवर्तन से तथा अनिष्ट विषयों के उद्वेग से रोकना, ब्रह्मचर्य की नौवाड मे स्त्री–पशु–नपुंसकवाले स्थानों का त्याग इत्यादि तथा ४ कषायों को रोकना। [२] १८ प्रवृत्ति धर्म ये हैं पाच महाव्रतों के पालन में प्रत्येक व्रत की ५—५ भावनासहित प्रवृत्ति रखना, इसी प्रकार ८ ज्ञानाचार, ८ दर्शनाचार आदि पच आचार के प्रकारों में प्रवृत्ति रखना। ऐसे ही ईर्या समिति आदि पाच समितियो एव मनोगुप्ति आदि तीन गुप्ति के पालन में प्रवृत्त होना।



३. खमासमण (प्रणिपात) सूत्र

इच्छामि खमासमणो ! वंदिउं,
जावणिज्जाए निसीहिआए,
मत्थएण वंदामि !



शब्दार्थ

इच्छामि–चाहता हू

खमासमणो–हे क्षमाश्रमण !

वंदिउ – वंदना करने के लिए

जावणिज्जाए—सारी शक्ति लगाकर

निसीहिआए–दोष दूर करके आपके प्रति दोषों (आशातनादि) का त्याग करके

मत्थएण वंदामि–मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हू।



भावार्थ

हे क्षमाश्रमण। मैं आपकी कुशलता आदि की पृच्छा तथा आप के प्रति अपने दोषों का त्याग करके आपको वंदना करना चाहता हू।

मस्तकादि पंचाग को झुकाकर मैं आपको प्रणाम करता हू।



सूत्र परिचय

इस सूत्र से क्षमाश्रमण को वदना की जाती हैं। 'क्षमाश्रमण' अर्थात् क्षमादि गुणवाला महातपस्वी गुरु अथवा तात्पर्य से तीर्थंकर, गणधरादि। इस सूत्र में गुरु को तथा तीर्थंकर परमात्मा को वंदन की गई है। सूत्र में वंदन अर्थात् पंचांग प्रणिपात मुख्य है। अतः इसे प्रणिपात सूत्र कहते हैं।

पहले खड़े रहकर दोनों हाथ जोड़कर "इच्छामि खमासमणो वंदिउं जावणिज्जाए निसीहिआए" बोलने के पश्चात नीचे घुटने टेककर दोनों घुटनों, इनके बीच में दोनों हाथ तथा आगे मस्तक इन पांचों अंगो से भूमि का स्पर्श करके 'मत्थएण वंदामि' कहकर वंदना की जाती हैं। इसे 'स्तोभ-वंदना' सूत्र कहते हैं।

आगे 'वंदना सूत्र' आएगा। उसे वृहद्वंदना सूत्र' कहते हैं। उसमें 'जावणिज्जाए निसीहीयाए' से विस्तारपूर्वक हैं। (१) 'अहोकायं कायसंफासं' से गुरू चरणों का मस्तक से स्पर्श करके वंदना करने के पश्चात् 'खमणिज्जो भे' से 'जावणिज्जं च भे तक 'जावणिज्जा=यापनीया' कहना चाहिए। तत्पश्चात (२) 'खामेमि खमा.' से 'वोसिरामितक' 'निसीहिया' बोलकर अर्थात गुरू के प्रति लगे हुए दोषों का निषेध अथवा त्याग अर्थात् प्रतिक्रमण-निंदा-गर्हा की जाती हैं उसकी संक्षिप्त स्वरूप इस स्तोभवंदन सूत्र में है।



गुरू से सुखसाता पूछना

इच्छकार सुहराइ ? सुहदेवसि ?
सुख-तप ? शरीर निराबाध ?
सुखसंजम-यात्रा निर्वहते होजी ?
स्वामी ! साता है जी ?
आहार पानी का लाभ देनाजी.



शब्दार्थ

इच्छकार—हे गुरु महाराज ! आपकी इच्छा हो तो पूछूं ?

१. सुहराइ--आपकी रात्रि सुखपूर्वक बीती ?

२. सुहदेवसि--आपका दिन सुखपूर्वक व्यतीत हुआ ?

३. सुखतप--तपस्या सुखपूर्वक होती है ?

४. शरीर निराबाध--शरीर पीड़ारहित है न ?

५. सुखसंजम यात्रा निर्वहते हो जी—आपकी संयम यात्रा अर्थात् चारित्र पालन सुखपूर्वक हो रहा है ?

६. स्वामि साता है जी—हे स्वामिन् ! सब प्रकार से आप को सुख-शांती है ? आहारपानी का लाभ देना जी—कृपया मुझे गोचरी आहार, पानी, वस्त्र, औषध आदि का लाभ दें।



भावार्थ तथा सूत्र परिचय

गुरु को सुखसाता पृच्छा :—

इस सूत्र द्वारा त्यागी गुरुमहाराज की साधना तथा शरीर की सुखरूपता के साथ साथ सर्वाङ्गी सुखसाता पूछी जाती है। उन्हें यह भी विनंती की जाती है कि वे हमारे घर पदार्पणकर आहार—पानी ग्रहण करें। अतः इस सूत्र का अपर नाम 'सुगुरु सुखसाता पृच्छा सूत्र' है। एक अन्य नाम 'गुरु निमन्त्रण सूत्र' भी है।

इसमें 'इच्छकार' अर्थात् 'इच्छाकार'। गुरु से जब पृच्छा करनी है तो उसके लिए गुरु की इच्छा जाननी चाहिए। तत्पश्चात् पृच्छा की

जाए। इस प्रकार इच्छा पूछने को इच्छाकार सामाचारी (आचार) कहते है।

हे गुरुदेव! आपकी आज्ञा-इच्छा हो तो पूछू कि —

१ आपकी गतरात सुखेन व्यतीत हुई? आपका दिवस सुखेन बीता? [प्रात १२ बजे तक पूछा जाए तो 'सुहराइ' कहना, तत्पश्चात् पूछना हो तो 'सुहदेवसि' कहना चाहिए।] इस प्रकार के पाच प्रश्न हैं। दूसरा प्रश्न है कि क्या आपकी तपस्या निर्विघ्न होती है? तीसरा है कि क्या आपके शरीर मे किसी प्रकार का कष्ट या दु ख तो नहीं है? चौथा है कि क्या आपकी सयमसाधना सुखपूर्वक हो रही है? पाचवा है कि क्या आपको सर्व प्रकारेण सुख शाति (साता) है?

इन प्रश्नों को पूछने का कारण यह है कि दिन में अथवा रात्रि में कोई बाधा या विघ्न उपस्थित हुआ हो, तप मे किसी प्रकार की रुकावट हो, शरीर में रोगादि की वेदना हो, विरोधियों की ओर से सयमसाधना में सकट उपस्थित किया गया हो तो श्रावक इनके निराकरण का प्रयत्न करे तथा साधुसेवा का महान लाभ ले। [अपने लिए शिष्य अथवा भक्त की इस सुखचिंता को जानकर गुरुदेव उत्तर देते हैं, 'देव गुरु पसाय' अर्थात् देव और गुरु की कृपा-प्रभाव से सुखशान्ति है।]

गुरु को किसी प्रकार की अशाता अथवा अशाति नहीं है, यह जान कर शिष्य अथवा भक्त गुरु को विनती करता है कि हे गुरुदेव! आप हमारे यहा पधारें तथा आहार-पानी ग्रहणकर मुझे धर्म का लाभ प्रदान करने की कृपा करें।

इसके उत्तर में गुरु महाराज फरमाते हैं—

'वर्तमान जोग' अर्थात् जैसा अवसर होगा।



४. अब्भुट्ठिओ [क्षामणक] सूत्र.

इच्छाकारेण संदिसह भगवान् !
अब्भुट्ठिओहं अब्भिंतर देवसिअं (राइअं)
खामेउं ?
इच्छं, खामेमि देवसिअं, जं किं चि
अपत्तिअं परपत्तिअं, भत्ते, पाणे,
विणए, वेयावच्चे, आलावे, संलावे,
उच्चासणे, समासणे,
अन्तरभासाए, उवरिभासाए,
जं किंचि मज्झ विणय-परिहीणं
सुहुमं वा बायरं वा,
तुब्भे जाणह, अहं न जाणामि,
तस्स मिच्छामि दुक्कडं.



शब्दार्थ

इच्छाकारेण–आपकी इच्छा से

संदिसह–आदेश दो

भगवान्–हे भगवान्।

अब्भुट्ठिओह–मैं तय्यार हुआ हू

अब्भितर देवसिअ–दिन विषयक अपराध की

अब्भितर राइअ–रात के अपराध की

खामेउ–क्षमा याचना के लिये

इच्छ–स्वीकार करता हू

खामेमि–क्षमा मागता हू

ज किंचि–जो कोई

अपत्तिअ–अप्रीतिकर

परपत्तिअ–अत्यत अप्रीतिकर

भत्ते–आहार विषयक

पाणे–पानी विषयक

विणये–विनय में

वेयावच्चे–सेवा मे

आलावे–एकवार की बातचीत में

सलावे–अनेक बार की बात में

उच्चासणे–आपसे ऊचे आसन पर

समासणे–आपके समान आसन पर

अंतर भासाए–आपके बोलते हुए बीच में ही बोलने में

उवरिभासाए–अधिक बोलने में

मज्झ–मेरा

विणय परिहीणं–विनय का भंग करके

सुहुमं वा बायरं वा–सूक्ष्म अथवा स्थूल (दोष–अपराध हुआ)

तुब्भे जाणह–आप जानते हैं

अहं न जाणामि–मैं न जानता होऊं

तस्स मिच्छामि दुक्कडं–वह मेरा अपराध मिथ्या दुष्कृत हो।



भावार्थ

हे गुरु भगवान् ! दिन और रात्रि में मेरे द्वारा हुए अपराधों की क्षमा याचना करने के लिए मैं कटिबद्ध हुआ हूं। अतः आप अपनी इच्छा से आज्ञा प्रदान करें ताकि मैं अपने अपराधों को खमाऊं। उनकी क्षमा याचना करूं (गुरु महाराज–खमावो।)

गुरु की आज्ञा प्राप्त होनेपर शिष्य भक्त कहता है–दिवस अथवा रात्रि की अवधि में मेरे द्वारा जो कोई अप्रीतिकर (आपके लिए अरुचिकर) विशेषरूपेण अप्रीतिकर कार्य हुआ हो, इसीप्रकार भोजन के विषय में, पानी के विषय में, विनय के पालन में, सेवा करने के विषय में, एक या अनेक बार बातचीत करते हुए, आपकी अपेक्षा ऊंचे आसनपर अथवा आपके समान आसन पर बैठने में, आपके दूसरे व्यक्ति से वार्तालाप करने के समय बीच में बोलने में, अनधिकारपूर्वक बोलने में, विनय का

उल्लघन करते हुए मुझसे छोटा या बडा अपराध हुआ हो और इस प्रकार विनयभाव की उपेक्षाकर अपराध करने का मुझे ज्ञान न हो परन्तु आप उसे जानते हों, मैं अपने ऐसे अपराधों के लिए क्षमार्थी हूं। मैं चाहता हू कि मेरे ऐसे अपराध और अविनय कार्य मिथ्या हों।



सूत्र परिचय

शिष्य अथवा भक्त स्वत प्रेरणा से गुरु के समक्ष सादर हाथ जोडकर खडा रहता है, अत इस सूत्र को 'अब्भुट्ठिओमि' सूत्र कहते हैं। इसके द्वारा शिष्य किंवा भक्त अपने अपराधों की क्षमा मागता है, अत इसे गुरु क्षमापना सूत्र भी।

इससूत्र का प्राण शब्द है—'खामेउ'--अर्थात् मैं खमाऊ? क्षमा मागू? 'खामेमि' अर्थात् मैं खमाता हू, क्षमा मागता हू।

क्षमा करना अर्थात् दूसरे के अपराध को समताभाव से सहन कर लेना, धैर्य रखना, उदारता दिखाना, करुणा करना, वैर रखने की प्रवृत्ति का त्याग करना।

क्षमा मागने का भाव है कि समक्ष खड़े व्यक्ति से अपने अपराध को क्षमा कर देने की याचना करना, अपने पर करुणा और दया करने की प्रार्थना करना, ऐसा निवेदन करना कि वह व्यक्ति हमारे अपराधों के प्रति बैरभाव न रखे, प्रत्युत उन्हें क्षमा कर दे।

इस सूत्र के माध्यम से अपने अपराधों को याद करके, गुरु को बताकर, गुरु के समक्ष शुद्ध हृदय से उन्हें स्वीकृत कर, पश्चातापपूर्वक दु खी

हृदय से क्षमा याचना की जाती है। तत्पश्चात् उन अपराधों को दूर करने के लिये तथा गुरु के प्रति उचित विनय प्रगट करने के निमित्त प्रवृत्ति की जाती है।



गुरुवंदन की विधि

विनयपूर्वक दो वार 'खमासमण' सूत्र वोलकर गुरु महाराज को वंदना करनी चाहिए। पश्चात् 'सुगुरु सुखसाताप्रृच्छा' सूत्र वोलकर उन्हे पंच-प्रश्नपूर्वक सुखसाता पूछना चाहिये। फिर 'अब्भुट्ठिओमि' सूत्र द्वारा गुरु से क्षमायाचना करनी चाहिये। (नोट :—यदि गुरु गणि, पंन्यास, उपाध्याय, अथवा आचार्य हो तो सुखसाता पूछकर पुनः खमासमण पढकर वंद करके 'अब्भुट्ठिओमि पढ़ना चाहिए।

विधिपूर्वक गुरुवंदना करने के उपरांत गुरु भगवान् से यथाशक्ति नवकारशी आदि तप का पच्चक्खाण लेना चाहिए। वे जो पच्चक्खाण दे उसे करबद्ध हो मन से धारना और स्वीकृत करना चाहिए।



गुरुवन्दन

गुरुवदन तीन प्रकार से होता है १ फिट्टा वदन २, थोभवदन तथा ३ द्वादशावर्तवदन। प्रथम फिट्टावदन मस्तकादि झुकाने से, द्वितीय थोभवदन पच्चाङ्गद्वारा दो वदना देने से होता है [गुरुवदन भाष्य]

आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक स्थविर तथा, रत्नाधिक इन पाचो को कर्म की निर्जरा के उद्देश्य से वन्दन करना चाहिए। [प्रवचन सारोद्धार]



गुरुवंदन की महिमा

पूज्य वदनीय श्री गौतमस्वामी ने भगवान् महावीर से विनयपूर्वक पूछा- हे भगवान्, गुरवदन करने से जीव को किस फल की प्राप्ती होती है।"

तरणतारण भगवान् ने फरमाया-- 'हे गौतम! ज्ञानावरणीय आदि कर्म गाढ बधन से बाधे हो तो वे शिथिल बधनवाले, दीर्घ स्थितिवाले हों तो अल्प अवधिवाले, तीव्र रसवाले अशुभ कम मद रसवाले तथा घने प्रदेशोवाले हो तो अल्प प्रदेशोंवाले हो जाते हैं। फलत जीव अनादि अनन्त ससार रूपी अटवी में दीर्घ समय तक परिभ्रमण नहीं करता।

हे गौतम! गुरवदन द्वारा जीव नीच गोत्रकर्म का क्षय करता है, उच्च गोत्रकम को बाधता है तथा अप्रहित। जिसका उलघन सभव नहीं। आज्ञा के फल से युक्त सौभाग्य नामकर्म का बधन भी करता है।"

[धर्मसग्रह]

गुरु उसे कहते हैं, जो शुद्ध धर्म का ज्ञाता हो, उसका आचरण करनेवाला हो, सदा उसी में वलीन हो और जीवों को उसी शुद्ध कर्म का उपदेश देनेवाला हो।

जो जीवनपर्यंत सर्वथा अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह व्रतों का पालन करता है, उसे ही गुरु कहते हैं। इस प्रकार का पञ्चमहाव्रतधारी गुरु धर्मज्ञ, धर्मकर्ता, धर्मपरायण तथा परम गुरु परमात्मा द्वारा प्ररुपित तत्त्व और मोक्षमार्ग रूप धर्म का उपदेष्टा होता है।

हमारे अज्ञान के हर्ता, हमारे धर्मानुष्ठान के प्रेरक, हमारी आत्मा की उन्नति के लिए दिशानिर्देशक उपकारी गुरु भगवान को सविनय तथा शास्त्रोक्त विधिसे प्रातः सायं वंदना करनी चाहिए।

परमगुरु परमात्मा द्वारा कथित ऐसे गुरु को प्रणाम करने से, उनकी विनय करने से, उनकी सेवा भक्ति करने से, हम परमात्मा के निकट पहुंच जाते हैं। साधना से प्रेरणा प्राप्त होती है तथा गुरुजी का निर्मल आशीर्वाद प्राप्त होता है। इस साधना तथा आशीर्वाद से मन शुद्ध और प्रसन्न होता है इसके अतिरिक्त गुरु के आशीर्वाद से हमारा मनोबल दृढ़ बनता है तथा प्रत्येक शुभ काम में सफलता प्राप्त होती है।

परमोपकारी गुरु भगवंतो को मन, वचन, कायसे वारंवार नमस्कार हो।



५. इरियावहिया-प्रतिक्रमण सूत्र

इच्छाकारेण संदिसह भगवन् !
इरियावहियं पडिक्कमामि !
(गुरु कहते हैं 'पडिक्कमहे)
इच्छं, इच्छामि पडिक्कामिउं ॥१॥
इरियावहियाए विराहणाए ॥२॥
गमणागमणे ॥३॥
पाणक्कमणे, वीयक्कमणे, हरियक्कमणे,
ओसा-उत्तिंग-पणग-दग-मट्टी
मक्कडा-संताणा-संकमणे ॥४॥
जे मे जीवा विराहिया ॥५॥
एगिंदिया, वेइंदिया,
तेइंदिया चउरिंदिया, पंचिंदिया ॥६॥
अभिहया, वत्तिया, लेसिया, संघाइया,
संघट्टिया, परियाविया, किलाकिर्या,

उद्दविया,
ठाणाओ ठाणं संकामिया,
जीवियाओ ववरोविया,
तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥७॥



शब्दार्थ

इच्छाकारेण–आपकी इच्छा से
संदिसह–आदेश दो
इरियावहिय–जाते आते हुई जीव हिंसा तथा साधु आचार मे हुई विराधना का
पडिक्कमामि–प्रतिक्रमण करता हू, उससे पीछे हटता हू
(गुरु कहते हैं–पडिक्कमेह=पीछे हटो)
इच्छ–आदेश मान्य है
इच्छामि– चाहता हू
पडिक्कमिउ–प्रतिक्रमण करना
इरियावहियाए–गमनागमन में होनेवाली
विराहणाए–विराधना
गमणागमणे–जाते आते हुए
पाणक्कमणे– दो, तीन, चार इन्द्रियोंवाले जीवों को दबाने में
बीयक्कमणे–बीज दबाने में
हरियक्कमणे–वनस्पति दबाने में
ओसा–आकाश से गिरे जल के जीव
उत्तिंग–चींटी के बिल
पणग–पचवर्ण निगोद (अनन्तकाय)
दगमट्टी–पानीवाली मिट्टी, कीचड
मक्कडासताणा–मकडी आदि के जाले
सक्रमणे–कुचलने में
जे मेजीवा–मेरे द्वारा जो जीव
विराहिया–पीडित हुए
एगिंदिया–एक इन्द्रियवाले

वेइंदिया– दो इन्द्रियवाले

ते इंदिया–तीन ,, ,,

चउरिंदिया–चार ,, ,,

पंचिंदिया– पांच ,, ,,

अभिहया–पाँव टकराया, आक्रमण किया

वत्तिया–उलटे किए धूल से ढके गए

लेसिया–परस्पर रगड़े गए,

संघाइया–इकट्ठे किए गए या टकराए गए

संघट्टिया–छूए गए

परियाविया–व्यथित किए गए

किलामिया–अंग भंग किए गए

उद्दविया–मृत प्रायः किया गया

ठाणाओठाणं–एक जगह से दूसरी जगह

संकामिया–बदले गए

जीवियाओ ववरोविया–प्राणरहित किए गए

तस्स–उसका

मिच्छा–मिथ्या हो

मि–मेरा

दुक्कडं–दुष्कृत्य



भावार्थ

हे गुरु भगवन्! अपनी इच्छा से मुझे गमनागमन की क्रिया से (अथवा साध्वाचार के उल्लंघन से) हो गयी विराधना से प्रतिक्रमण करने की, पीछे लौटने की, आज्ञा प्रदान करो।

गुरुजी कहते हैं–प्रतिक्रमण करो। शिष्य उत्तर देता है–मैं आपकी आज्ञा शिरोधार्य करता हू और अब मैं गमनागमन विषयक विराधना का प्रतिक्रमण शुद्ध आन्तरिक भाव से प्रारंभ करता हू।

मार्गपर जाते अथवा आते हुए जानते या अजानते कोई त्रसजीव (द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय), बीज (सजीव धान्य), हरि वनस्पति ओस का पानी, चींटी का बिल, शैवाल, कच्चा पानी, मिट्टी अथवा मकडी का जाला आदि मेरे द्वारा दबाया गया इसमें यदि किसी जीव की विराधना की हो, उदाहरणरूप जीवो मे किसी एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय अथवा पचेन्द्रिय जीव को किसी प्रकार पीडा होती हो, किसी जीव को मैंने ठोकर लगाई हो अथवा कुचला हो, धूल से ढका हो, परस्पर रगड़ा हो, घिसा हो, समूह में इकट्ठा किया हो, उसे दु ख हो इस तरह से छुआ हो, भयभीत किया हो, अंगभंग किया हो, मृतसमान किया हो, एक स्थानसे दूसरे स्थान पर रखा हो, प्राणहीन किया हो इत्यादि बातों में मेरा दुष्कृत्य मिथ्या हो।



सूत्र परिचय

इस सूत्र में गमनागमन आदि में हुई जीवों की विराधना का स्मरण करके उसका प्रतिक्रमण या पश्चाताप है। अतः इसे 'इरियावहियं सूत्र' कहते हैं। इसे प्रतिक्रमण सूत्र भी कहा जाता है। कारण यह है कि इस में घटित हुई जीव क्लेश (और साध्वाचार उल्लंघन) के पाप के प्रतिघृणा और उससे निवृत्त होने की क्रिया का वर्णन है। प्रतिक्रमण सूत्र में उल्लेख है- जैसे न्यायाधीश के समक्ष क्षमायाचना करके हत्यारा भी गद्गद हृदय से अपराध स्वीकार करता है वैसे ही अपने गुरु के समक्ष अपने द्वारा की गई हिंसा को गद्गद हृदय से स्वीकार करने के लिए यह सूत्र है।

इस सूत्र का सारांश यह है कि हमारा कामकाज, आना जाना, बोलना चालना, विचार करना किसी भी अंश में ऐसा न होना चाहिए कि जिससे किसी भी सूक्ष्म या बादर प्राणी को किसी भी प्रकार मन, वचन, कायसे दुःख पहुँचे। हमारे जीवन का दैनिक व्यवहार और विचार ऐसा न हो जिससे किसी भी जीव को पीड़ा या त्रास हो। किंतु सांसारिक जीवन ही कुछ इस प्रकार का है कि इसमें ऐसा पाप हो जाया करता है। साधु जीवन में भी प्रमादवश सूक्ष्म जीवों की विराधना हो जाती है। साध्वाचार के भंग से भी पाप का प्रादुर्भाव होता है। इस सूत्र द्वारा उसकी शुद्धि करने के पश्चात् ही अन्य धर्म--क्रिया कर सकते है। अतः इस सूत्र का प्रयोग सामायिक, प्रतिक्रमण, चैत्यवंदन आदि क्रियाओं में किया जाता है।

इस सूत्र का प्रधान स्वर यह है कि हमारे द्वारा जानते हुए या न जानते हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म जीव विराधना भी हुई हो तो उसे भी पाप समझा जाए। पाप के प्रति घृणा--ग्लानि हो तथा पाप का सच्चे हृदय से पश्चाताप किया जाए। इस सूत्र में वर्णित 'मिच्छामि दुक्कडं' पद प्रतिक्रमण

का मूल आधार है। अत इसका बार बार मनन करना चाहिए। इस पद का तात्पर्य है कि यदि हमने अपराध किया है तो उसके प्रति हमारे हृदय में अतीव घृणा हो। साथ ही पाप करनेवाली अपनी आत्मा से भी हमारे हृदय मे बडी भारी घृणा हो। 'खेद, मैं कैसा दुष्ट, अधम कि मैंने यह पाप किया'। तदुपरात पाप के विषय में पश्चातापपूर्वक क्षमा मागे और पाप की निवृत्ति की इच्छा करें।

पौषध अथवा चारित्र जीवन मे कहीं आये गये नहीं तथा उसके कारण जीव विराधना न हुई हो तो भी नवीन क्रिया के प्रारभ मे 'इरिया-वहिय' किया जाता है। इससे प्रगट होता है कि यदि जीव विराधना न भी हुई हो, परन्तु साध्वाचार का लेशमात्र भी उल्लघन हुआ हो तो उस पाप की शुद्धि करने के हेतु यह सूत्र उपयोगी है। अतएव यहा 'इरिया-वहियाए विराहणाए' पद से भी धर्मसग्रह आदि शास्त्र जीव विराधना के समान साध्वाचार के भग से उत्पन्न चारित्रविराधना को भी स्वीकृत करते हैं।



६. तस्स उत्तरी करणेणं सूत्र

तस्स उत्तरीकरणेणं, पायच्छित्त करणेणं,
विसोहीकरणेणं, विसल्लीकरणेणं,
पावाणं कम्माणं निग्घायणट्ठाए,
ठामि काउसग्गं ॥१॥



न पारेमि--(वह कायोत्सर्ग ध्यान) पूरा न कर

ताव--तब तक

ठाणेण मोणेण झाणेण--स्थिरता, मौन और ध्यानपूर्वक

अप्पाणकाय--अपनी काय को

वोसिरामि -छोडता हू, शरीर की क्रियाएँ छोडता हूँ।



भावार्थ

इन क्रियाओं को छोड़कर--जैसे कि श्वास लेना, श्वास छोडना, खासी आना, छींक आना, जम्हाई आना, डकार आना, वायु का मोचन करना, चक्कर आना, पित्त के कारण मूर्छा का आना, शरीर का कुछ हिलना, शरीर में कफ आदि का सूक्ष्म सचार होना, स्थिर की गई दृष्टि का भी अशत हिल जाना, इत्यादि काय की प्रवृत्तिया। आदि शब्द से अग्निस्पर्श, शरीर छेदन, अपने समक्ष हो रही पचेंद्रिय जीव की हत्या, मानवहता चोर अथवा आन्तरिक विद्रोह या सर्पदश के कारणों से शरीर को अन्यत्र खिसकाना। इन अपवाद रूप क्रियाओं के अतिरिक्त समूल अथवा आशिक भग से विहीन मेरे द्वारा धारण किया गया कायोत्सर्ग सपन्न हो।

इस ध्यान के पूर्ण होने के पश्चात् जबतक 'नमो अरिहताण' पद बोल-कर अरिहतों को नमन करके कायोत्सर्ग न पारू तब तक अपने शरीर को स्थैर्य, मौन और ध्यान में रखकर शारीरिक प्रवृत्तियों का त्यागरूप कायोत्सर्ग करता हू।



सूत्र परिचय

इस सूत्र में कायोत्सर्ग के आगार अर्थात् अपवादों की जो सूची दी गई है उसके अतिरिक्त यह सूत्र कायक्रिया-बंधी का होने से इसे अन्नत्थ सूत्र के द्वारा कायोत्सर्ग किया जाता है। अतः यह कायोत्सर्ग सूत्र भी कहलाता है।

हम शरीर को सर्वस्व मान लेते हैं, इसे 'मैं' समझ लेते हैं। परन्तु वस्तुतः शरीर 'मैं' या आत्मा नहीं, यह आत्मा का स्वरूप नहीं। शरीर जड़ है। आत्मा चेतन है, ज्ञान-दर्शन-चारित्रमय है। परन्तु आत्मा को देहाध्यास है, देहाभेद भ्रम है। उसे देहममता लगी हुई है। यह दूर हो तभी आत्मा अध्यात्मभाव में अग्रसर हो सकती है। अतः मुमुक्षु के लिए देहाध्यास दूर करने का एक उपाय है-कायोत्सर्ग करना। इसमें प्रतिज्ञा-पूर्वक ध्यान में स्थिर रहना होता है और श्वासोच्छवास आदि आगार यानि अपवाद छोड़कर काय को सर्वथा निश्चल करना और मौन धारण करना पड़ता है। इसमें शरीर की किसी प्रकार की संभाल नहीं की जाती मक्खी, मच्छर आदि का उपद्रव होनेपर भी कायोत्सर्ग ध्यान के समय शरीर के अंगो को बिल्कुल हिलाया नहीं जाता। संक्षेप में इस बात की सतत प्रतीति की जाती है कि शरीर है ही नहीं, केवल आत्मा ही है।

कायोत्सर्ग से विषय-कषायों को जीता जा सकता है, उससे समभाव की प्राप्ति होती है।



६. लोगस्स (नामस्तव) सूत्र

लोगस्स उज्जोअ-गरे,
धम्म-तित्थ यरे जिणे,
अरिहंते कित्तइस्सं,
चउवीसं पि केवली ॥१॥
उसभ मजिअं च वंदे,
संभव मभिणंदणं च सुमइं च,
पउमप्पहं सुपासं,
जिणं च चंदप्पहं वंदे ॥२॥
सुविहिं च पुप्फदंतं,
सीअल सिज्जंस वासुपुज्जं च,
विमल मणंतं च जिणं,
धम्मं संतिं च वंदामि ॥३॥
कुंथुं अरं च मल्लिं,
वंदे मुणिसुव्वय नमि जिणं च,

वंदामि रिट्ठनेमिं,
पासं तह वद्धमाणं च ॥४॥
एवं मए आभिथुआ,
विहुय-रयमला पहीण जरमरणा,
चउवीसं पि जिणवरा,
तित्थयरा मे पसीयंतु ॥५॥
कित्तिय वंदिय महिया,
जेए लोगस्स उत्तमा सिद्धा,
आरुग्ग बोहिलाभं
समाहिवर मुत्तमंदिंतु ॥६॥
चंदेसु निम्मलयरा,
आइच्चेसु आहियं पयास-यरा,
सागरवर गंभीरा,
सिद्धासिद्धिं मम दिसंतु ॥७॥



शब्दार्थ

तस्स–उसके (जिस विराधना का प्रतिक्रमण किया उसके)

उत्तरीकरणेण -स्मृति करण से

पायच्छित्तकरणेण—प्रायश्चित्त करने से

विसोहीकरणेण—विशुद्धि करने से

विसल्ली करणेण—शल्य दूर करने से

पावाणकम्माण—पापकर्मों का

निग्घायणट्ठाए—नाश करने के लिए

ठामि काउसग्ग—मैं कायोत्सर्ग करता हू



भावार्थ

पूर्वोक्त जीव विराधना अथवा साध्वाचार भग के फलस्वरूप बाधे गए पापकर्मों के संपूर्ण क्षय के लिए, उसके स्मरण से, प्रायश्चित्त से, विशेष शुद्धि से और नि शल्यता से मैं कायोत्सर्ग मे स्थिर होता हू ।

(स्मरण में पश्चात्तापपूर्वक विराधना को स्मृतिपट पर अकित करनी चाहिए।)



सूत्र परिचय

शरीर के किसी भाग में गहराई तक कांटा, कांच का टुकड़ा, लोहे की कील आदि चुभ गई हो तो वैद्य (१) पूरी तरह उसका पता लगाता है, तत्पश्चात् (२) शरीर के जिस भाग में चुभा हो उस घाव पर मल्हम आदि औषधी लगाता है। इससे सूजन का बढना रुक जाता है और अन्दर रहा हुआ कांटा आदि शीघ्र बाहर आ जाता है। इसके साथ ही (३) रोगी को उचित पाचक चूर्ण दिया जाता है जिससे पेट साफ हो जाए और भीतर का रक्त उस कांटे या टुकड़े के कारण विकृत न हो तथा (४) अंत में जब कांटा या कण ऊपर आए उस समय उसे सरलता से खींच लिया जाय। इस प्रकार कांटा निकालने के चार क्रमिक विधान हैं—निदान, प्रतिकार, सफाई और निःशल्यता।

इसी प्रकार पूर्व सूत्र में कथित विराधना आदि से आत्मा में गहराई तक प्रविष्ट हुए पाप को चार उपायों से बाहर निकालकर आत्मा को शुद्ध बनाने की विधि इस सूत्र में निर्दिष्ट की गई है।

सर्वप्रथम पश्चाताप से पाप को ऊपर लाया जाता है अर्थात् स्मरण किया जाता है। बाद में प्रायश्चित, पापघृणा तथा पाप के मूलभूत दोष के प्रति घृणा भाव से आत्मा की मूलतः विशुद्धि की जाती है ताकि पाप का शल्य न रहे और पाप निर्मूल हो जाए। अंत में कायोत्सर्ग पापकी शेषभूत अशुद्धि को दूर करके आत्मा को पापमुक्त कर देता है।

इस सुत्र में पापकी पुनः उत्तरीकरणादि प्रक्रिया बताई गई हैं। अतः इसे 'उत्तरीकरण' सूत्र भी कहते हैं।



८७. अन्नत्थ ऊससिसणं सूत्र

अन्नत्थ ऊससिएणं,
नीससिएणं, खासिएणं,
छीएणं, जंभाइएणं,
उड्डुएणं, वाय-निसग्गेणं,
भमलीए, पित्तमुच्छाए ॥१॥
सुहुमेहिं अंग-संचालेहिं,
सुहुमेहिं खेल-संचालेहिं ॥२॥
सुहुमेहिं दिट्ठि-संचालेहिं,
एवमाइएहिं—आगारेहिं
अभग्गो अविराहिओ,
हुज्ज मे काउसग्गो ॥३॥
जाव अरिहंताणं भगवंताणं
नमुक्कारेणं न पारेमि ताव ॥४॥
कायं ठाणेणं मोणेणं
झाणेणं अप्पाणं वोसिरामि ॥५॥



शब्दार्थ

अन्नत्थ-(इन अपवादों) अतिरिक्त-
ऊससिएणं-श्वास लेते हुए
नीससिएणं-श्वास छोडते हुए
खासिएणं-खांसी आनेपर
छीएणं-छींक आनेपर
जंभाइएणं-जम्हाई आनेपर
उड्डुएणं-डकार आनेपर
वायनिसग्गेणं-वायु मोचन के समय
भमलीए-चक्कर आनेपर
पित्तमुच्छाए-पित्त की मूर्छा के समय
सुहुमेहिं-सूक्ष्म रीति से
अंगसंचालेहिं-अंग हिलाते समय
सुहुमेहिंखेल संचालेहिं-सूक्ष्म कफ के समय
सुहुमेहिंदिट्ठिसंचालेहिं-सूक्ष्म दृष्टि स्पन्दन के समय
एवमाइएहिं-इत्यादि क्रियाओं का
आगारेहिं-आगार, अपवाद छोड़कर
अभग्गो-उलंघनरहित
अविराहिओ-विराधनाहीन
हुज्ज-हो
मे काउसग्गो-मेरा कायोत्सर्ग (निश्चित किये हुए ध्यान से युक्त, काय प्रवृत्ति का त्याग)
जाव-जब तक
अरिहंताणं-अरिहंत
भगवंताणं-भगवंतों को
नमुक्कारेणं-नमस्कार करके

शब्दार्थ

लोगस्स—पचास्तिकाय लोक में
उज्जोअगरे—प्रकाश करनेवाले
धम्मतित्थयरे–धर्मतीर्थ के स्थापक
जिणे—राग द्वेप के विजेता
अरिहंते—अरिहंतों का
कित्तइस्स—कीर्त्तन करेंगे
चउविसंपि–चौबीस
केवली—केवलज्ञानी
उसभ—ऋपभदेव को
अजिअ–अजितनाथ को
वंदे–वंदना करता हूं
संभव–संभवनाथ को
अभिणंदणंच–और अभिनन्दन स्वामी को
सुमइंच–और सुमतिनाथ को
पउमप्पहं–पद्मप्रभ स्वामी को
सुपास–सुपार्श्वनाथ को
जिणं च–तथा जिनेश्वर को
चंदप्पहं–चन्द्रप्रभ स्वामी को
सुविहिंच–और सुविधिनाथ को
पुप्फदंत–पुष्पदंत („)
सीअल सिज्जंस–शीतलनाथ तथा श्रेयांसनाथ को
वासुपुज्जंच–वासुपूज्य स्वामी को
विमलमणंत च जिनं–विमलनाथ तथा अनंतनाथ जिन को
धम्मं संतिं च वंदामि–धर्मनाथ शांतिनाथ को वंदना करता हूं।
कुंथुं अरं च मल्लिं–कुंथुनाथ, अरनाथ और मल्लीनाथ को

वंदे मुणिसुव्वयं नमि जिणं च–मुनिसुव्रतस्वामी और नमिनाथ को वंदना करता हूं
वंदामि रिट्ठनेमिं–अरिष्ट नेमिनाथ को वंदना करता हूं।
पासंवह वद्धमाणंच–उसी प्रकार पार्श्वनाथ तथा वर्धमान स्वामी को
एवंमए–इस प्रकार मेरे द्वारा
अभिथुआ–स्तुति किए गए
विहूयरयमला–कर्मरजमल से रहित
पहीणजरामरणा–वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त
चउवीसंपि जिणवरा–२४ भी जिनेश्वरदेव
तित्थयरा मे–तीर्थंकर मुझपर
पसीयंतु–प्रसन्न हों
कित्तिय वंदिय–महिया–स्तुति, वंदना, पूजा किए गए
जेए लोगस्स–लोक में जो ये
उत्तमा सिद्धा–उत्तम सिद्ध
आरुग्ग–भाव आरोग्य (मोक्ष) के लिए
बोहिलाभं–बोधिलाभ
समाहिवर–श्रेष्ठ (भाव) समाधि
उत्तमंदितु–उत्तम दीजिए
चंदेसुनिम्मलयरा–चन्द्रों से अधिक निर्मल
आइच्चेसु–सूर्यों से
अहियंपयासयरा–अधिक प्रकाश देनेवाले
सागरवरगंभीरा–श्रेष्ठ सागर से भी गंभीर
सिद्धा–हे सिद्ध भगवंतों
सिद्धिं मम दिसंतु–मुझे मोक्ष प्रदान करो



भावार्थ

लोक अर्थात् धर्मास्तिकाय आदि पाच अस्तिकायरूप विश्व को ज्ञान प्रकाशित करनेवाले, धर्मरूपी तीर्थ के संस्थापक, रागद्वेष के विजेता तथा अष्ट प्रातिहार्य से सुशोभित, केवलज्ञान के द्वारा पूर्णता–परमात्म भाव को प्राप्त करनेवाले चौबीस तीर्थकरों की (अन्य तीर्थंकरों के साथ) मैं उनका नाम लेकर स्तुति करूगा। श्री ऋषभदेव, श्री अजितनाथ, श्री सभवनाथ, श्री अभिनदन स्वामी, श्री सुमतिनाथ, श्री पद्मप्रभ स्वामी, श्री सुपार्श्वनाथ तथा श्री चन्द्रप्रभ स्वामी को मैं वदन करता हू ॥ २ ॥

श्री सुविधिनाथ अथवा पुष्पदत, श्री शीतलनाथ, श्री श्रेयासनाथ श्री वासुपूज्य स्वामी, श्री विमलनाथ, श्री अनन्तनाथ, श्री धर्मनाथ तथा श्री शातिनाथ को मैं नमन करता हू ॥ ३ ॥

श्री कुथुनाथ, श्री अरनाथ, श्री मल्लिनाथ, श्री मुनिसुव्रत स्वामी, श्री नमिनाथ, श्री अरिष्टनेमि, श्री पार्श्वनाथ तथा श्री वर्धमान अथवा महावीर स्वामी को मैं नमस्कार करता हू ॥४॥

इस प्रकार मेरे द्वारा स्तुति किए गए, कर्मरज तथा मोहमल से मुक्त, पुन जन्ममरण से विहीन चौबीस तथा अन्य जिनवर तीर्थंकर मुझपर प्रसन्न हो ॥५॥

लोक में जो उत्तम सिद्ध हैं तथा लोगो ने जिन का कीर्तन, वदन और पूजन किया है, वे मुझे आरोग्य, बोधिलाभ (जैनधर्म स्पर्शना) अथवा भावारोग्य मोक्ष के लिए बोधिलाभ और उत्तम चित्त की समाधि प्रदान करें ॥ ६ ॥

चन्द्रो से भी अधिक निर्मल, सूर्यो से भी अधिक प्रकाश करनेवाले एव स्वयभूरमण समुद्र की अपेक्षा भी अधिक गभीर सिद्ध भगवत मुझे सिद्धि दें ॥७॥

सूत्र परिचय

इस सूत्र में २४ तीर्थंकर परमात्माओं की नामकीर्तन रूप स्तुति करके वंदना की गई है। अतः इसे 'चउवीसत्थय' सूत्र अथवा 'चतुर्विंशति जिननामस्तवः' सूत्र भी कहते हैं। सूत्र के प्रथम शब्द से इसका नाम 'लोगस्स' सूत्र भी है।

इस सूत्र के द्वारा ओष्ठ और जिह्वा को हिलाये बिना कायोत्सर्ग में मन के भीतर तथा कायोत्सर्ग न होनेपर प्रगट बोलकर तीर्थंकरों को नामानुसार नमस्कार किया जाता है।

इस सूत्र की प्रथम गाथा में प्रभु के चार मुख्य अतिशय (विशेषताएँ) वर्णित की गई हैं। 'लोगस्स उज्जो अगरे' से ज्ञानातिशय, 'धम्मतित्थयरे' से वचनातिशय, 'जिणे' से अपाय (रागादि) अपगमातिशय, 'अरिहंते' से पूजातिशय, इस बात का ध्यान इसप्रकार किया जा सकता है कि प्रभु को मन के समक्ष लाकर उनके हृदय में विश्व प्रकाशी ज्ञानप्रकाश, मुख में धर्मतीर्थस्थापक वाणी, नेत्र में जिनकी वीतरागता तथा मुख के दोनों ओर डुलाए जाते हुए चामर प्रातिहार्य देखे जाएँ। इस प्रकार २४ जिन प्रभु और तदनन्तर अनंत जिन भगवान् देखें।

बाद की तीन गाथाओं में-क्रमशः ८, ८, ८ प्रभुओं को वंदना की गई है। तत्पश्चात् प्रभु की निर्मल और अक्षय अमर के रूप में स्तुति करके उनकी प्रसन्नता अर्थात् प्रभाव की याचना की गई है। तदुपरांत उत्तम सिद्ध के रूप में स्तुति करके आरोग्य, बोधिलाभ (अथवा भाव-आरोग्य, स्वरूप मोक्षार्थ बोधिलाभ) एवं उत्तम भावसमाधि की प्रार्थना की गई है।

अंतिम गाथा में प्रभु की अनुपम निर्मलता, प्रकाशकता, गंभीरता की प्रशंसा करके सिद्धि यानी मोक्ष की अभ्यर्थना की गई है।

यह त्र अतीव प्रभावशाली है।

सामायिक

सावद्यकर्ममुक्तस्य दुर्ध्यानरहितस्य च।
समभावे मुहूर्त्तं तद्‌व्रत सामायिक मतम्॥

पापप्रवृत्तियों से मुक्त तथा दुर्ध्यान से रहित आत्मा का एक मुहूर्त्त-पर्यन्त जो समभाव है, उसका नाम सामायिक व्रत है।

(आवश्यक सूत्र टीका)

जो कोई मोक्ष गये, जाते हैं और जायेंगे वे सभी सामायिक की महिमा से ही गए, जाते हैं और जायेंगे, ऐसा समझना चाहिए।

(सबोध प्रकरण)



सामायिक का फल

दो घड़ी (४८ मिनिट) समपरिणामरूप सामायिक करनेवाला श्रावक ९२ करोड, ५९ लाख, २५ हजार, नौ सौ पच्चीस तथा ३/८ पल्योपम वर्ष (९२ ५९ २५ ९२५ ३/८) देवभव का आयुष्य बांधता है।



सामायिक का महत्व

सामायिक एक व्रत है। इसे लेने की विधि है। केवली भगवान् का कथन है कि जिसकी आत्मा संयम, नियम और तप में सुरीत्या तत्पर होती है अर्थात् जो इन तीनों का पालन करती है, उसे समभाव अथवा सामायिक की प्राप्ति होती है।

सामायिक का अर्थ है समभाव। सुख में हर्ष–आनंद नहीं और दुःख में खेद नहीं, चाहे संसार के इष्ट पदार्थ सामने उपस्थित हों चाहे अनिष्ट, इन दोनों के प्रति मन में राग अथवा द्वेष, आसक्ति अथवा दुर्भाव नहीं रखना चाहिए। मन उदासीन–तटस्थ, स्थिर व प्रसन्न हो।

इस समभाव की प्राप्ति के लिए राग, द्वेष, हर्ष, खेद उत्पन्न करने वाले पाप व्यापार या सांसारिक प्रवृत्तियों, सावद्य प्रवृत्तियों नहीं करनी चाहिए। ये होती रहें तो स्वभावतः इनके संबंध में रागादि उत्पन्न होंगे। दूसरी बात यह है कि केवल इन प्रवृत्तियों को न करने से ही तत्संबंधी पाप से बचा नहीं जा सकता। क्योंकि मन में इन पापों की आशंसा अपेक्षा विद्यमान है, अतः अवसर मिलते ही तत्काल पाप हो जाते हैं। वे तभी रुकते हैं जब इनके त्याग की प्रतिज्ञा ही कर ली जाए। उससे सावद्य प्रवृत्तियों रुक जाती हैं। फलतः तद्विषयक रागादि नहीं होते और किसी अंश में समभाव का आविर्भाव होता है। इस समभाव अथवा सामायिक की साधना आजीवन करने योग्य है।

४८ मिनिट की आदत से जीवन पर्यन्त हर्ष–खेद अथवा राग–द्वेष के प्रसंगों पर प्रभाव पड़ता है। कहा भी है कि सामायिक करते समय श्रावक भी श्रमण के समान (सर्वपापरहित तथा समभावयुक्त) हो जाता है। इस लिए सामायिक प्रतिदिन करनी चाहिए।

सामायिक का महत्व बताते हुए कहा गया है कि करोड़ों जन्मों तक तीव्र कष्टों को सहकर भी जीव जिन कर्मों का क्षय नहीं कर सकता–पापों का नाश नहीं कर सकता--इन्हें समभाव से युक्त आत्मा आधे क्षण में नष्ट कर सकती है। दूसरे शब्दो में सामायिक एक उत्कृष्ट साधना है।

आत्मा से बद्ध कर्मों का आधे क्षण में क्षय करनेवाली सामायिक का अपने जीवन में नित्य सेवन करें।



९. श्री 'केरमि भंते' सामायिक महादंडक सूत्र

करेमि भंते सामाइयं,
सावज्जं जोगं पच्चक्खामि ।
जावनियमं पज्जुवासामि,
दुविहं, तिविहेणं,
मणेणं, वायाए, काएणं,
न करेमि, न कारवेमि ।
तस्स भंते पडिक्कमामि,
निंदामि, गरिहामि,
अप्पाणं वोसिरामि ।

शब्दार्थ

करेमि—करता हू
भते—हे भगवन्
सामाइय—सामायिक
सावज्ज जोग—पाप प्रवृत्ति को
पच्चक्खामि—प्रतिज्ञा से छोडता हूं
जावनियम—जबतक नियम का
पज्जुवासामि—पालन करता हू
दुविह—दो प्रकार से (करना, कराना)
तिविहेण—तीन प्रकार से
मणेग, वायाए, काएण—मन, वचन, काय से
न करेमि—करू नहीं
न कारवेमि— कराऊ नहीं
तस्स भते—अत हे भगवन्! (अब तक सेवित) उस (पाप) का
पडिक्कमामि—प्रतिक्रमण करता
निंदामि—निंदा करता हू
गरिहामि—आपके समक्ष निंदा करता हू
अप्पाण वोसिरामि—अपनी ऐसी पापयुक्त आत्मा को—

× १०. सामाइअ-वय-जुत्तो सूत्र

सामाइय-वय-जुत्तो,
जावमणे होइ नियम-संजुत्तो,
छिन्नइ असुहंकम्मं
सामाइय जत्तिआ वारा ॥१॥
सामाइअम्मि उ कए,
समणो इव सावओ हवइ जम्हा,
एएण कारणेणं,
बहुसो सामाइयं कुज्जा ॥२॥



१०. सामाइअ--वय--जुत्तोसूत्र

सामाइअ--वय--जुत्तो,
जाव मणे होइ नियम--संजुत्तो,
छिन्नइ असुहंकम्मं
सामाइअ जत्तिआ वारा ॥१॥
सामाइअम्मि उ कए,
समणो इव सावओ हवइ जम्हा,
एएण कारणेणं,
वहुसो सामाइअं कुज्जा ॥२॥



सामायिक विधि से ली, विधि से पारी, विधि करते हुए जो कोई अविधि हुई हो उस सबकी मन, वचन, काय से मिच्छामि दुक्कडं।

दश मन के, दश वचन के, बारह काय के इन ३२ दोषों में यदि कोई दोष लगा हो तो उसका मन, वचन, काय से मिच्छामि दुक्कडं।



शब्दार्थ

सामाइअवयजुत्तो--सामायिक व्रत से युक्त
जावमणेहोइ--जब तक मन हो
नियमसंजुत्तो--नियम युक्त
छिन्नइअसुहं कम्मं--(तब तक) अशुभकर्म दूर करता है
सामाइअ--सामायिक
जत्तिआ वारा--जितनी वार
सामाइअम्मि--सामायिक
उकए--तो करने से
समणोइव--साधु के समान
सावओ--श्रावक
हवइ--होता है
जम्हो--जिस कारण से
एएणकारणेणं--इस कारण से
बहुसो--अनेकवार
सामाइअं--सामायिक
कुज्जा--करनी चाहिए



भावार्थ

जब तक और जितनीबार मन में पाप के त्याग का नियम रखकर सामायिक की जाती है, तब तक तथा उतनी बार सामायिक करनेवाला अशुभ कर्मों का नाश करता है।

सामायिक करनेवाला सामायिक की अवधि मे श्रावक होनेपर भी साधुतुल्य हो जाता है। अत सामायिक बारबार करनी चाहिए।

मैंने यह सामायिक विधि पूर्वक ली है और उसे विधिपूर्वक पूर्ण किया है। इस विधि को करते हुए प्रतिज्ञा भग के कारण कोई दोष लगा हो तो तद्विषयक मेरा पाप निष्फल हो।

सामायिक के समय मे दस मन के दस वचन के और बारह काय के इस प्रकार कुल ३२ दोषों में से किसी भी दोष का सेवन भूल से हुआ हो तो उस विषय का मेरा पाप मिथ्या हो।



सूत्र परिचय

सूत्र का प्रारंभ 'सामाइअ--वयजुत्तो' से होता है। अतः इसका नाम 'समाइअवय जुत्तो'--सूत्र है। इस सूत्र से सामायिक पारी जाती है। अतः इसका दूसरा नाम 'सामाइक पारण' सूत्र है। सामायिक पारना अर्थात् सामायिक को विधिपूर्वक पूर्ण करना।

इस सूत्र की पहली गाथा में सामायिक के नियम की महिमा प्रदर्शित की गई है। जब तक मन में नियम युक्तता है, तब तक पापकर्मों का छेद होता है।

सूत्र की दूसरी गाथा में सामायिक के प्रभाव का वर्णन किया गया है। सामायिकवाला श्रावक साधु के समान बन जाता है। कारण यह है कि जैसे साधु के लिए आजीवन सामायिक में पापयोग का प्रतिज्ञाबद्ध त्याग होता है, वैसे ही दो घड़ी की सामायिक में श्रावक के लिए होता है। इस महिमा और प्रभाव के कारण इस सूत्र में उपदेश दिया गया है कि सामायिक बार बार करनी चाहिए।

अन्त में सामायिक की अवधि में भूल से प्रतिज्ञाभंग के कारण मन से, वचन से अथवा काय से कोई दोष या पाप लगा हो तो गुरु को साक्षी बनाकर उसकी क्षमायाचना की गई है।



सामायिक लेने की विधि

सामायिक के लिए आवश्यक उपकरण —

१ कटासन २ मुहपत्ति ३ चरवला [गुरु महाराज की अनुपस्थिति मे] इन तीन के अतिरिक्त धर्म की पुस्तक, पुस्तक रखने के लिए चौकी, बाजोट अथवा ऊचा आसन और नवकारवाली।

सामायिक करते समय शुद्ध वस्त्र मे केवल धोती और दुपट्टा पहनना चाहिए।

सामायिक करने से पूर्व जिस स्थानपर सामायिक करनी हो, उसे चरवले से उपयोगपूर्वक (जिससे किसी जीव जतु को दु ख न हो) साफ करके आसन बिछाना चाहिए।

गुरु महाराज की उपस्थिति में उनसे न तो अति दूर और न ही उनके अति निकट बैठना चाहिए। अर्थात् मध्यम अतर से बैठना चाहिए।

गुरु महाराज उपस्थित न हों तो ऊचे आसन–स्थानपर धर्म पुस्तक आदि ज्ञानादि उपकरण रखकर बॉए हाथ में मुँहपत्ति पकडकर उसे मुख के पास रखकर तथा दायां हाथ ज्ञानादि के साधन पुस्तक या माला के सन्मुख औंधा (उलटा) करके एक नवकार तथा पचिंदिय सूत्र बोलकर गुरु–स्थापना करनी चाहिए।

तत्पश्चात् 'खमासमण' सूत्र बोलकर भूमि का स्पर्श करते हुए गुरु जी को पचांग से वदना करनी चाहिए। [बोलते समय इस सूत्र के तीन भाग किए जाएँ–१ इच्छामि खमासमणो वदिउ, २ जावणिज्जाए निसी-हियाए, ३ मत्थएण वदामि।]

वांचना, पढ़ना, धर्मसूत्र का अभ्यास करना, स्तोत्र, जाप, धर्मध्यान करना, शुभ भावना में रहना। सामायिक की अवधि में धर्म, आत्मा और परमात्मा को छोड़कर अन्य कोई विचार न करना चाहिए। नहीं कोई दूसरी बात। ४८ मिनिट बाद विधिपूर्वक सामायिक पारणी चाहिए।



सामायिक पारणे की विधि

१. सर्वप्रथम खमासमण देकर फिर खड़े होकर इरियावही, तस्स उत्तरी तथा अन्नत्थ सूत्र बोलना। एक लोगस्स अथवा चार नवकार का काउसग्ग करना। (काउसग्ग में 'चंदेसुनिम्मलयरा' तक लोगस्स मन में पढना।) काउसग्ग पूरा होनेपर 'नमो अरिहंताणं' कहकर काउसग्ग पारणा तथा पूरा लोगस्स प्रगट कहना।

२. फिर खमासमण देकर आज्ञा मांगना 'इच्छाकोरण संदिसह भगवन्! मुँहपत्ति पडिलेहुं ?' गुरु कहें--पडिलेहेह। बाद में 'इच्छं' कहकर ५० बोल के चिंतन के साथ मुँहपत्ति पडिलेहना।

३. फिर खमासमण देकर पुनः खड़े होकर आज्ञा मांगना--'इच्छाकारेण संदिसह भगवन्' सामायिक पारुं ?'

४. गुरु कहें-'पुणो वि कायव्वं'--सामायिक पुनः भी करना-'यथाशक्ति' करुंगा।

५. फिर खमासमण देकर प्रकट कहना, 'इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! सामायिक पारूँ ?' तब गुरु कहे—'आयारो न मोत्तव्वो'- आचार का त्याग न करना। अर्थात् सामायिक के प्रति रुचि कम न करना।

६ तब कहना 'तहत्ति' (आपका कथन सत्य है।) इसके पश्चात् घुटने पर दायाँ हाथ रखकर एक नवकार गिनकर 'सामाइयवयजुत्तो' सूत्र पढ़ना चाहिए।



प्रणाम और चैत्यवंदन का भेद

१. केवल मस्तक झुकाकर प्रणाम करना एकांगी प्रणाम २. दो हाथ जोड़ने से दो अंगी ३. दो हाथ जोड़कर मस्तक नत करने से त्रयांगी ४. दो हाथ और दो घुटने झुकाने से (भूमि पर लगाने से) चतुरंगी ५. दो हाथ, दो पांव और मस्तक भूमि पर झुकाने से पंचांगी प्रणाम कहलाता है।

'दंडक' अर्थात् अरिहंत चेइयाणं आदि चैत्यस्तव सूत्र और जो स्तुति अर्थात् काउसग्ग करने के पश्चात् (केवल 'अरिहंत चेइयाणं' और अन्नत्थ सूत्र बोलकर काउसग्ग करके) संस्कृत अथवा किसी अन्य भाषा में कही जाती है, उसके पढ़ने से यह लघु चैत्यवंदन कहा जाता है।

चार योग (अर्थात् एक स्तुति का संपूर्ण जोड़) नमुत्थुणं, लोगस्स, पुक्खरवर, सिद्धाणं बुद्धाणं सूत्रों के साथ हो तो यह मध्यम चैत्यवंदन कहा जाता है।

अन्नत्थ, नमुत्थुणं, अरिहंत चेइयाणं, लोगस्स, पुक्खरवरदी और सिद्धाणं बुद्धाणं—ये पांच दंडक सूत्र, चार स्तुतियां (का जोड़) और जयवीयराय बोलकर किया गया चैत्यवंदन उत्कृष्ट देववंदन माना जाता है।



चैत्यवंदन का फल

शुद्ध भाव, शुद्ध वर्णोच्चारण एवं अर्थचिंतन आदि द्वारा की गई वंदना खरे सोने और असली छापवाले रुपए के समान होती है। ऐसी वंदना यथोदित गुणवाली होने के कारण निश्चित रूपसे मोक्षदायक है।

शुद्ध भाववाली किंतु शुद्ध वर्णोच्चारण और अर्थचिंतन से हीन वंदन, खरा सोना किंतु खोटी छापवाला रुपया है। यह अभ्यास दशा में अतीव सुखकारी है। भावविहीन वंदना वर्णादि से शुद्ध होनेपर भी खोटे सोने और असली छाप के रुपए की भांति खोटी है। उभयशुद्धि रहित वंदना खोटे सोने और खोटी छापवाले रु के तुल्य सर्वथा खोटी और अनिष्टकारी है (पचाशक)



चैत्यवंदन से होनेवाला लाभ

चैत्यवंदन अर्थात जिनेश्वर भगवान् की प्रतिमा को वंदन। जिनेश्वर को तीर्थंकर, वीतराग, अर्हत्, अरिहंत आदि भी कहते हैं। रागद्वेष को जीतनेवाले जिन, केवली, वीतराग कहलाते हैं। इनमें जो प्रातिहार्य आदि ऐश्वर्य के कारण मुख्य होते हैं। वे तीर्थंकर जिनेश्वर कहलाते हैं। तीर्थ अर्थात् संसार रूपी सागर से तरने का साधन। तीर्थ को धर्म शासन भी कहते हैं। ऐसे तीर्थ अथवा धर्म-शासन के संस्थापक तीर्थंकर। उन्हें किसी भी जड या चेतन पदार्थ के प्रति रागद्वेष नहीं होता, अतः वे वीतराग

माने जाते हैं। इनमें भी जो अष्टप्रातिहार्य–३४ अतिशय–सुरा–सुरेन्द्र द्वारा की जानेवाली पूजा के योग्य होते हैं–अर्ह होते हैं वे अर्हत, अरिहन्त तीर्थंकर माने गए हैं। अनंतकाल में ऐसे अनंत तीर्थंकर होते हैं। इस अवसर्पिणी काल में इन भरतक्षेत्र में ऐसे २४ तीर्थंकर हुए हैं। इन सब के नाम इसी पुस्तक में अन्यत्र दिए गए हैं।

चैत्यवंदन में तीर्थंकर परमात्मा को वंदन करने तथा उनकी स्तुति करने का विधान है। तीर्थंकर का जीवन पहले निष्पाप, शुद्धि और साधनामय होता है, बाद में जीवनमुक्ति रूप सिद्धिमय होता है। वे सर्वज्ञ बन कर जगत् को सत्यतत्व और शुद्धमार्ग का उपदेश देते हैं। इनका जीवन प्रेरक होता है।

१. उनकी वंदना, स्तुति करने से अपना मन प्रसन्न व निर्मल होता है।

२. मन को पाप त्याग, सम्यक् साधना व सुकृत करने की प्रेरणा मिलती है।

३. तीर्थंकर के गुणों के चिंतन, मनन से हमारे में उन गुणों का बीजारोपण होता है जो भविष्य में गुणरूप में फलित होते हैं।

४. अरिहंत देव की वंदना, पूजा, गुणगाथा से शुभ भावनाएँ जागरित होती हैं, जीवन पवित्र बनता है।

५. मन प्रभु की स्तुति में लीन होता है, अशुभकर्म दूर होते हैं।

६. इतनी अवधि में पाप प्रवृत्ति से व्यक्ति बचा रहता हैं।

शुद्धभावेन सविधि चैत्यवंदन से शुभभाव जागते हैं। फलतः कर्मों का क्षय, अक्षुण्ण मोक्ष सुख की प्राप्ति होती है। हे जिनेश्वर भगवन्! आप की वंदना व स्तुति से मेरा जीवन निर्मल और निष्पाप बने।



११, 'जगचिंतामणि'-चैत्यवंदन सूत्र

इच्छकारेण संदिसह भगवन् !
चैत्यवंदन करूं ? इच्छं,
जग-चिंतामणि ! जगनाह !
जग-गुरु ! जगरक्खण !
जगबंधव ! जगसत्थवाह !
जगभाव-विअक्खण !
अट्ठावय-संठविअ-रूव !
कम्मट्ठ विणासण !
चउवीसंपि जिणवर !
जयंतु अप्पडिहय-सासण ॥१॥
(वस्तु छंद)
कम्मभूमिहिं कम्मभूमिहिं,
पढम संघयणि,
उक्कोसय सत्तरि-सय

जिणवराण विहरंत लब्भइ
नव कोडिहिं केवलिण,
कोडिसहस्स नवसाहु गम्मइ,
संपइ जिणवर वीस,
मुणि बिहुं, कोडिहिं वर-नाण
समणह कोडि—सहस्स-दुअ
थुणिज्जइ निच्चविहाणि ॥२॥
जयउ सामिय, जयउ सामिय,
रिसह सत्तुंजि,
उज्जिंजति पहु--नेमि जिण,
जयउ वीर सच्च उरी--मंडण,
भरुअच्छहिं मुणिसुव्वय,
मुहरि-पास दुह-दुरिअ-खंडण,
अवर-विदेहिं तित्थयरा,
चिहुं दिसि विदिसि जिं केवि

तीआणा-गय-संपइय
वंदु जिण सव्वे वि ॥३॥
सत्ताणवइ सहस्सा,
लक्खाछप्पन्न अट्ठकोडिओ,
बत्तीस–सय बासियाइं,
तिअ-लोय चेइए वंदे ॥४॥
पनरस-कोडि–सयाइं,
कोडी बायाल लक्ख अडवन्ना,
छत्तीस-सहस्स-असीइं,
सासय-बिंबाइं पणमामि ॥५॥



भावार्थ

हे जगत् की चिंता दूर करनेवाले मणि। हे जगत् के नाथ। हे जगत् के गुरु। हे जगरक्षक ! हे विश्व बंधु। हे विश्व के सार्थपति। हे जगत् के समस्त पदार्थों का स्वरूप जानने में विचक्षण। हे अष्टापद पर्वत पर स्थापित प्रतिमावालो। हे अष्टकर्मदल के नाशक। हे ऋषभादि चौवीस भी (अर्थात् अन्य अनन्त) तीर्थंकर भगवन्तो। हे अप्रतिहत शासन वालो ! (मेरे हृदय में) जयवन्त रहो ॥१॥

१५ कर्मभूमियों में उत्कृष्टकाल में वज्रऋषभनाराच संहनन वाले विचरते हुए जिनेश्वर भगवानों की अधिकाधिक संख्या १७० होती है। (तब) सामान्य केवलियों कि संख्या अधिकाधिक ९ करोड़, साधुओं की संख्या ९० अरब होती है। वर्तमानकाल में २० तीर्थंकर विचर रहे है। केवलज्ञानी मुनि दो करोड़, श्रमण २० अरब हैं। इन सब की प्रातः काल स्तुति की जाती है ॥२॥

हे स्वामिन् ! आप विजयी हों, विजयी हों। शत्रुंजय पर विराजमान हे ऋषभदेव ! गिरनार पर विराजमान हे नमि जिन ! साचोर के श्रृंगारस्वरूप हे वीर जिन ! भरुच में प्रतिष्ठित हे मुनि सुव्रतस्वामिन् ! मथुरा में विराजमान, दुःखपापनाशक हे पार्श्वनाथ भगवान् ! आप की जय हो।

इनके अतिरिक्त अन्य 'विदेही' मुक्त जो कोई स्थापना जिन रूप तीर्थंकर परमात्मा, भूत, भविष्य किंवा वर्तमानकाल में चारो दिशाओं विदिशाओं में हो उन सबको मैं वंदन करता हूं ॥३॥

तीन लोक में स्थित आठ करोड, सत्तावन लाख दो सौ बयासी (८, ५७, ००, २८२) शाश्वत जिन मंदिरों को प्रणाम करता हूं ॥४॥ त्रिलोक की १५ अरब, ४२ करोड़ ५८ लाख, ३६ हजार और ८० शाश्वत प्रतिमाओं को नमन करता हूँ।



सूत्र परिचय

यह सूत्र 'जगचिंतामणि' शब्द से आरभ हुआ है, अत इसका नाम जगचिंतामणि है। प्रात प्रतिक्रमण मे इस सूत्र का पाठ होता है तथा इसमे चैत्यवदन मुख्य है। इस कारण इसे प्रभात चैत्यवदन भी कहते है।

जिनमदिर, जिन और प्रतिमा को चैत्य कहते है। इस सूत्र द्वारा ऐसे चैत्यों को भावपूर्वक वदना की गई है। प्रात उठकर परमोपकारी भगवान् का नाम स्मरण करने से उनके गुणो की स्तुति करने से, मन में उनका दर्शन करने से हृदय शुभ और शुद्ध होता है। अन्त करण में एक दिव्य आनद हिलोरे लेता है। प्रात काल ही मन शुभ, शुद्ध और आनदित होने के कारण सारा दिन उसका प्रभाव रहता है। दिवस शुभ भाव और अन्य शुभ प्रवृत्तियों मे व्यतीत होता है। कहा जाता है कि इस सूत्र के प्रारभ से 'अप्पडिहय सासण' तक के पद पहली गाथा गणधर श्री गौतम स्वामी जी द्वारा अष्टापद जाने पर २४ तीर्थंकरों की स्तुति के निमित्त रचि गई है। दूसरी (कम्मभूमिहिं) गाथा में विचरण करनेवाले उत्कृष्ट तथा वर्तमान १७०–२० 'तीर्थंकरो' करोड तथा दो करोड केवल ज्ञानियो, ९० अरब और २० अरब श्रमणों की स्तुति है। तीसरी (जयउसामिय) गाथा में शत्रुजय आदि पाच तीर्थो के मूलनायकों की जय बुलाई है। इसी में अन्य विदेही अर्थात् भूत, भविष्य, वर्तमान काल के चारो दिशाओं विदिशाओं मे स्थापित जिनों (जिनबिंबों) को नमस्कार किया गया है। इसके पश्चात् ४, ५ गाथा मे विश्व के जिन मदिरो तथा जिन बिंबो की सख्या बताकर उन्हें वदना की गई है। इतना अवश्य है कि इसमें व्यतर और ज्योतिष देवलोक में स्थित शाश्वत मदिरों और प्रतिमाओं की सख्या का समावेश नहीं है। क्योंकि वे असख्य हैं।



१२. जंकिंचिनाम-तित्थं-सूत्र

जंकिंचि नाम तित्थं,
सग्गे पायालि माणुसे लोए,
जाइं जिण बिंबाइं,
ताइं सव्वाइं वंदामि ॥१॥



शब्दार्थ

जंकिंचि–जो कोई
नाम–वाक्यालंकार रूप शब्द
तित्थ–तीर्थ
सग्गे–स्वर्ग में
पायालि–पाताल में
माणुसे लोए–तिर्यंक लोक में
जाइं–जितने
जिण बिंबाइं–जिन प्रतिमाएँ
ताइं सव्वाइं वंदामि–उन सबको वंदना करता हूँ



भावार्थ

स्वर्ग, पाताल तथा मनुष्य लोक में जो भी तीर्थ स्थान हों और वहां जितने भी जिन बिंब हों, उन सबको मैं नमस्कार करता हूँ।



सूत्र परिचय

'जं किंचि' शब्द से सूत्र का प्रारंभ होने के कारण इसका नाम जंकिंचि सूत्र है। इसमें तीनों के आलंबन से मन को वीतराग बनने की तीर्थों को संक्षेपतः वंदना की गई है। फलतः इसे 'लघु तीर्थ वंदन सूत्र' भी कहते हैं।

जो संसार से तारे वह तीर्थ। इस तीर्थ के दो भेद हैं'--जंगम, स्थावर जंगम अर्थात् गतिशील--हिलते डुलते। स्थावर अर्थात स्थिर। जिनशासन और शासन धारक मुनि जंगम तीर्थ हैं। तीर्थंकरों के प्रतिष्ठ मंदिर स्थान, पवित्र क्षेत्र, पवित्र भूमियां, कल्याणक भूमियां आदि स्थावर तीर्थ हैं। उदाहरणतः पावापुरी, संमेतशिखर, शत्रुंजय, गिरनार आदि।

पवित्र तीर्थ भूमियों और जिनबिंबों की वंदना करने से हृदय में परमात्मा के प्रति भक्ति--बहुमान का पवित्र भाव जागरित होता है। विशेष चिन्तन करने से तीर्थंकरों के पावन चरणकमलों द्वारा पवित्रीकृत भूमियों से पवित्र जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा प्राप्त होती है। इसी कारण तीर्थयात्रा का महत्व है। इस सूत्र के माध्यम से स्वर्ग पाताल एवं पृथ्वी लोक पर स्थित सभी तीर्थों और उन में विराजमान जिन चैत्यों को वंदना की गई है।



१३. नमुत्थुणं (शक्रस्तव) सूत्रं

नमुत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं ॥१॥
आइगराणं, तित्थयराणं,
सयं संबुद्धाणं ॥२॥
पुरिसुत्तमाणं, पुरिस सीहाणं
पुरिस—वर पुंडरिआणं,
पुरिस—वर गधंहत्थीणं ॥३॥
लोगुत्तमाणं, लोग—नाहाणं,
लोग—हिआणं, लोग—पइवाणं
लोग पज्जोअ—गराणं ॥४॥
अभयदयाणं. चक्खुदयाणं,
मग्गदयाणं, सरणदयाणं,
बोहिदयाणं ॥५॥
धम्मदयाण. धम्मदेसयाणं.
धम्मनायगाण, धम्म—सारहीणं

धम्मवरचाउरंत–चक्कवट्टीणं ॥६॥
अप्पडिहय–वरनाण--दंसणधराणं,
वियट्ट–छउमाणं ॥७॥
जिणाणं-जावयाणं,
तिन्नाणं–तारयाणं,
बुद्धाणं--बोहयाणं,
मुत्ताणं--मोअगाण ॥८॥
सव्वनूंणं सव्वदरिसणिं
सिव-मयल-मरुअमणं–तमक्खय–
मव्वाबाहमपुणरावित्ति
सिद्धिगइ-नामधेयं ठाणं संपत्ताणं,
नमो जिणाणं जिअभयाणं ॥९॥
जे अ अइआ सिद्धा,
जे अ भविस्संति णागए काले,
संपइ अ वट्टमाणा,
सव्वे तिविहेण वंदामि ॥१०॥

शब्दार्थ

नमुत्थु -नमस्कार हो
[ण-यह पदवाक्य शोभार्थ है]
अरिहंताण--अरिहंतो को
भगवताण--भगवतों को
आइगराणं--(धम के) आदिकर्ताओं को
तित्थयराण--तीर्थंकरों को
सय सबुद्धाण -स्वय सम्यग् बोध पानेवालो को
पुरिसुत्तमाण--जीवों में उत्तम को
पुरिससीहाण--जीवों में सिंह तुल्य को
पुरिसवर पुडरियाण--जीवों में श्रेष्ठ कमल समान को
पुरिसवर गधहत्थीण--जीवों मे श्रेष्ठ गधहत्थी जैसे को
लोगुत्तमाण--सकल मध्यलोक में उत्तम को
लोगनाहाण--चरमावर्त प्राप्त जीवों के नाथों को
लोगहियाण--लोक के हितकारी को
लोगपइवाण--सज्ञी लोक के लिये दीप समान को
लोग पज्जोअगराण--१४ पूर्वधर गणधर लोगो को उत्कृष्ट प्रकाश देनेवालों को
अभयदयाण--चित्तस्वस्थता देनेवालों को
चक्खुदयाणं -धर्मदृष्टि के दाताओं को
मग्गदयाण--सरल चित्त देनेवालों को
सरणदयाण--तत्त्व जिज्ञासा ,, ,,
बोहिदयाणं--तत्त्व बोध ,, ,,
धम्मदयाण--चारित्र धर्म ,, ,,
धम्मदेसयाण--धर्मोपदेश ,, ,,
धम्मनायगाण--धर्म के नायकों को

धम्मसारहीणं--धर्म के सारथियों को
धम्म--वर चाउरंत चक्कवट्टीणं--चतुर्गति भंजक श्रेष्ठ धर्मचक्रवालों को
अप्पडिहयवरनाण दंसणधराणं--अस्खलित श्रेष्ठ (केवल) ज्ञान दर्शन के धारकों को
वियट्टछउमाणं--छद्‌न अर्थात् आवरण--घातीकर्म के नाशकों को
जिणाणं जवयाणं--जीतनेवाले तथा जितानेवालों को
तिण्णाणं--तारयाणं--तरे हुए और तारनेवालों को
बुद्धाणं बोहयाणं--बोधि प्राप्त तथा बोधि प्राप्त करानेवालों को
मुत्ताणं मोअगाणं--स्वयं मुक्त तथा मुक्त करानेवालों को
सव्वन्नूणं--सर्वज्ञों को
सव्वदरिसीणं--सर्वदर्शियों को
सिव-मयल मरुअ--मणंत--निरुपद्रव, स्थिर रोगरहित, अनंत
मक्खयमव्वाबाह--अक्षय, अबाध
मपुणरावित्ति--जहां से पुनरागमन न हो, ऐसा
सिद्धिगइ नामधेयं ठाणं संपत्ताणं
सिद्धिगति नामक स्थान प्राप्त करनेवालों
नमो जिणाणं जिय भयाणं--भय को जीत लेनेवाले जिनों को मैं नमस्कार करता हूँ।
जेअ अइआ सिद्धा--जो जिन अतीत काल में सिद्ध हुए
जेअ भविस्संतिणागएकाले--जो भविष्यकाल में होंगे
संपइअ वट्टमाणा--और जो वर्तमान काल में विद्यमान हैं
सव्वे तिविहेण वंदामि--सबको त्रिविध वंदना करता हूँ।



पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२८	१९	गुरुदेव ?	गुरुदेव !
२६	१	भगवान्	भगवन्
२६	५	परपतिक्ष	परपत्तिक्ष
२७	३	भगवान्	भगवन्
२९	८	सूत्र भी।	सूत्र भी कहते हैं।
३१	३	पच्चाङ्ग	पचाग
३१	३	द्वारा दो वंदना	द्वारा दो क्षमाश्रमण देने से तथा तृतिय द्वादशवर्तन वंदन दो वदना
३३	२	पडिक्कमामि !	पडिक्कमामि ?
३३	३	पडिक्कमहे	पडिक्कमेह
३३	अंतिम	किलाकिया	किलामिया
३५	१०	विराहयाए	विराहणाए
४०	अंतिम	काउसग्ग	काउस्सग्ग
४१	७	निग्घाएणट्ठाए	निग्घायणट्ठाए
४२	८	काउसग्ग	काउस्सग्ग
४३	शिपक	ऊसमिलण	ऊससिएण
४३	१	काउसग्गो	काउस्सग्गो
४३	२०	"	"
४४	१६	कार्योम्सर्ग	कायोत्सर्ग
४८	अंतिम	सिद्धासद्धि	सिद्धा सिद्धि
४९	११	अभिणदणच	अभिणंदण च
४९	२३	जिन	जिण
४९	अंतिम	अर	अरं

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५०	८	पहीणजरामरणा	पहीणजरमरणा
५१	२	रागद्धेष	रागद्वेष
५२	अंतिम	यह त्र	यह सूत्र
५६	२	पच्चक्ररवामि	पच्चक्खामि
५७	१०	वायाए	वायाए
५९	६	सावध	सावद्य
६०	शिर्षक	सामाइअ	सामाइय
६०	४	जत्तिआ	जत्तिया
६०	५	सामाइअम्मि	सामाइयम्मि
६०	७	राएए	एएणं
६१ [१० वाँ सूत्र का पुनर्मुद्रण हुआ है अतः रद समजना]			
६२	५	सामाइअवयजुत्तो	सामाइयवयजुत्तो
६२	९	सामाइअ	सामाइय
६२	१०	जत्तिआ	जत्तिया
६२	११	सामाइअम्मि	सामाइयम्मि
६२	१५	हवई	हवइ
६२	१६	जम्हो	जम्हा
६२	१९	सामाइअं	समाइयं
६४	१–२	सामाइअ वयजुत्तो	सामाइय वयजुत्तो
६६	६	काउसग्ग	काउस्सग्ग
६७	९	'इच्छं पुनः'	'इच्छं' पुनः
६७	११	कहें	कहे
६८	७–८	काउसग्ग	काउस्सग्ग
७०	६–७	काउसग्ग	काउस्सग्ग
७२	२	अहं	अर्हं

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७३	१	इच्छकरेण	इच्छाकारेण
७४	अंतिम	नेविं	केत्ति
७५	५	वासियाइ	वासीयाइ
७७	६	तिक्ष–लोय	तिक्ष–लाए
७७	४	क्षर्जिति	उर्जिति
७७	१२	चिट्ठदिसि त्रिदिशि	चिट्ठदिसि विदिसि
८१	६	तिथक	तिर्यक
८३	६	गधहत्थीण	गधहत्थीण
८३	६	पइवाण	पईवाण
८४	१	चक्कवट्टाण	चक्कवट्टीण
८४	७	मोअगाण	मोक्षगाण
८४	८	मव्वनृण	सव्वन्नूण
८४	८	मव्वदरिसर्णि	सव्वदरिसीण
८४	१३	क्षइक्षा	क्षईक्षा
८५	२	पदवाक्य	पदवाक्य
८६	६	जवयाण	जावयाण
८९	९	क्षर्थान्	क्षर्थात्
८९	११	भावजिनो	भावजिने
८९	१६	नमम्कार	नमस्कार
८९	अंतिम	क्षहिइताण	अरिहताण
९१	१	चेइक्षाइ	चेइयाइ
९३	०	चेइक्षाई	चेइयाइ
९३	९	मतो–स्थिल	सतो–स्थित
९४	२	भरहेरवय	भरहेरवय
९४	४	तिदड	तिदड

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०५	२	होऊ	होउ
१०५	१३	दुवखक्खओ	दुक्खक्खओ
१०५	अंतिम	वोहिलाओ	वोहिलाभो
१०७	१	जय हो	जय-जय हो
१०७	२	जयगुरु	जगगुरू
१०७	२१	वंधनं	वंधणं
११३	१	चेइआणं	चेइयाणं
११३	२	काउसग्गं	काउस्सग्गं
१२५	५	जनु	जानु
१४१	१३	जिम	जिन
१४२	अंतिम	तदप णतिंहा	तदपण तिंहा
१६३	शिर्षक	सिद्धचल	सिद्धाचल
१६८	अंतिम	पाच्चक्खामि	पच्चक्खामि



भावार्थ

अरिहंतों को, भगवंतों को नमस्कार हो ॥१॥

धर्म की आदि करनेवालों को, श्रमणसंघ रूपी तीर्थ की स्थापना करनेवालों को तथा समारत्याग का स्वयं प्रतिबोध प्राप्त करनेवालों को ॥२॥

भव्य जीवों में परोपकारादि गुणों द्वारा उत्तम, कर्म आदि के सन्मुख शूरवीरतादि गुणों द्वारा सिंह समान, कर्म--कीचड़--भोगजल से पृथक् उत्तम पुंडरिक--कमल समान, स्वचक्र, परचक्र महामारी आदि सात प्रकार के उपद्रव दूर करने में गंधहस्ती समान को ॥३॥

भव्य प्राणीरूप लोक में विशिष्ट तथा भव्यत्व की आदि द्वारा उत्तम, रागादि उपद्रव से रक्षणीय विशिष्ट भव्य लोक में मोक्षमार्ग के योग व क्षेम द्वारा स्वामी, धर्मास्तिकाय आदि पंचास्तिकाय लोक की यथार्थ प्ररूपणा द्वारा हितकारी, निकटस्थ भव्य लोकों के हृदय में विद्यमान अज्ञान तथा मिथ्यात्व रूपी गाढ़ अंधकार को दूर करने में लोकप्रदीप, १४ पूर्वधर जैसे विशिष्ट जीवों को उत्कृष्ट श्रुतप्रद्योत देने के कारण लोकप्रद्योत करने वालों को ॥४॥

अभय और चित्तस्थैर्य को देनेवाले, धर्मरुचि धर्म आकर्षण रूपी नेत्र का दान करनेवाले, तत्त्व जिज्ञासा देनेवाले, अनुकूल क्षयोपशम रूप सरलतास्वरूप मार्ग देनेवाले, तत्त्व जिज्ञासा रूपी शरण देनेवाले, मोक्षवृक्ष की मूलरूप बोधि का अर्थात् श्रुतधर्म का लाभ देनेवालों को ॥५॥

चारित्र धर्म के दाता, ३५ गुणों से युक्त वाणी द्वारा सुलगते संसार के मध्य में रहनेवालों को शान्त करनेवाली मेघतुल्य धर्म--देशना देने वाले, स्वयं उत्कृष्ट धर्म के साधक होने से धर्म के सच्चे नायक, अश्व के समान जीवों को धर्ममार्ग में प्रवर्तित करानेवाले, उन्मार्ग से रोकने में

दमनकर्ता होने के कारण धर्मसारथि, चतुर्गति विनाशक श्रेष्ठ धर्मचक्र के धारकों को ॥६॥

सर्वत्र अस्खलित केवलज्ञान और केवलदर्शन के धारणकर्ता, सर्व प्रकार के घाती कर्मों से मुक्त को ॥७॥

राग और द्वेष पर विजय पाने से स्वयं जिन बननेवाले, उपदेश द्वारा दूसरों को भी जिन बनानेवाले, सम्यगदर्शनादि जहाज द्वारा अज्ञान--समुद्र को पार कर जानेवाले, दूसरों को भी पार करानेवाले, केवलज्ञान प्राप्त करके बुद्ध बने हुए, दूसरों को भी बुद्ध बनानेवाले, सर्व प्रकार के कर्म-बंधनों से मुक्त होनेवाले, दूसरों को भी विमुक्त करानेवालों को ॥८॥

जो सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं तथा शिव, स्थिर, व्याधि और वेदना से रहित, अनन्त, अक्षय, अव्याबाध, अपुनरावृत्ति (जहां जाकर पुनः संसार में लौटना नहीं होता) सिद्धगति नामक स्थान को प्राप्त कर चुके हैं उन जिनेश्वर भगवंतों को, जितभय को, नमस्कार करता हूं ॥९॥

जो अतीतकाल में सिद्ध हो चुके हैं, जो भविष्यकाल में सिद्ध होने वाले हैं और जो वर्तमान काल में अरिहंत रूप में विद्यमान हैं, उन सब को मन, वचन और काय से वंदन करता हूं ॥१०॥



सूत्र परिचय

इस सूत्र में अरिहत भगवान् की उत्कृष्ट स्तुति है। इसका एक एक पद अरिहत प्रभुकी विशिष्ट विशेषता सूचित करता है।

प्रथम शब्द के आधार पर यह सूत्र 'नमुत्थुण' सूत्र कहलाता है। प्रत्येक तीर्थंकर के माता के गर्भ मे आने के समय प्रथम सौधर्म देवलोक का शक्रेन्द्र इस सूत्र के द्वारा भगवान् की स्तुति करता है। अत इसे 'शक्रस्तव' भी कहते है।

इस सूत्र में 'नमो जिणाण जिअभयाण' पद तक भाव जिनकी स्तुति की गई है। 'जे अ अइआ सिद्धा' गाथा में द्रव्य जिनको नमस्कार है। भाव जिन अर्थात् भावतीर्थंकर। भाष्य वचन है–भावजिणा समवसरणरथा ' समवसरण में तीर्थ की स्थापना कर रहे हो, देशना दे रहे हों तब वे भावजिना उनके अतिरिक्त पृथ्वीतल पर विचरणकर रहे हो वे द्रव्य जिन कहलाते हैं। (उस अवस्था मे भी वे भाव अरिहत है किन्तु भाव तीर्थंकर जिन नहीं, क्योकि भावनिक्षेप यथानाम अर्थ की अपेक्षा रखता है।)

इस सूत्र में अंतिम गाथा को छोड़कर नव सपदा हैं। (सपदा–एक भाव को दर्शानेवाला पद समूह) प्रारभ में 'नमो' नमस्कार के साथ ' त्थु ' अर्थात् हो, पद रखकर उच्च (सामार्थ्ययोग के) नमस्कार की प्रार्थना की गई है। भगवान् का दर्शन करते समय दोनो हाथ जोड़कर इस पद को बाद के प्रत्येक पद के साथ पढ़कर सिर झुकाते हुए स्तुति की जा सकती है। जैसे नमोत्थुण अरिहताण , नमोत्थुण भगवताण , नमोत्थुण आइगराण अथवा अरिहताणं नमोत्थु, भगवताण नमोत्थु, आइगराण नमोत्थु इत्यादि।

इस सूत्र में अरिहंत भगवान् को प्रत्येक पद द्वारा विशेषण प्रदान कर केवल स्तुति ही नहीं की, परन्तु पदों में निहित गंभीर भावों में निहित गंभीर भावों में परमात्मा का यथार्थ स्वरूप कैसा होता है, इतर दर्शनों के क्या क्या मत हैं और उनमें तथ्यांश कितना है, जैनदर्शन की प्रमुख विशेषताएँ कौन कौन सी हैं, आत्मोत्थान के उपाय कौन-कौन से हैं, इत्यादि विषयों का समावेश है।

(देखें 'ललित विस्तरा विवेचन 'परमतेज')



१४. जावंति चेइआइं सूत्र

जावंति चेइआइं,
उड्ढे अ अहे अ तिरिअ-लोए अ
सव्वाइं ताइं वंदे,
इह संतो तत्थ संताइं ॥ १ ॥



शब्दार्थ

जावंति–जितने

चेइआइं–चैत्य, जिन बिंब

उड्ढे अ–और ऊर्ध्व लोक में

अ हे अ–और अधोलोक में

तिरिअ लो ए अ–और मर्त्य लोक में

सव्वाइं–सबको

ताइं वंदे–उन्हें वंदन करता हूं

इह–यहीं

संतो–स्थित

तत्थ–वहां

संवाइं–विराजमान



भावार्थ

ऊर्ध्व लोक, अधोलोक तथा मध्य लोक में जितने भी जिनमंदिर और जिनबिंब हों, वहां विद्यमान उन सबको यहां स्थित मैं वंदन करता हूं।



सूत्र परिचय

वीतराग जिनेश्वर भगवान की प्रतिमा साक्षात् जिनेश्वर जैसे है। वह वंदनीय है, इसी प्रकार उसका मंदिर भी वंदनीय है। वंदनादि द्वारा इन दोनो के आलंबन से मन को वीतराग बनने की दिशा मे अग्रसर होने के लिए असीम बल प्राप्त होता है। इस छोटे से सूत्र द्वारा विश्व के जिनमंदिरों तथा प्रतिमास्वरूप जिनेश्वर भगवतों को वंदन किया गया है।

मानो हम अलोक में खड़े हो कर सामने १४ राजलोक देख रहे हैं। उनमें नीचे से ऊपर तक मंदिर और चैत्य दृष्टिगोचर हो रहे हैं। यह भावना करते हुए नमन करना चाहिए



१५. जावंत केवि साहू सूत्र

जावंत केवि साहू,
भरहेरवय-महा—विदेहेअ,
सव्वेसिं तेसिं पणओ,
तिविहेण ।तिदंड-विरयाणं ॥१॥



शब्दार्थ

जावतकेवि--जितने भी कोई

साहू--साधु

भरहेरवय--भरत व ऐरवत क्षेत्र में

महाविदेहेअ--और महाविदेह क्षेत्र में

सव्वेसिं तेसिं--उन सबको

पणओ--प्रणाम करता हू

तिविहेण--तीन प्रकार से (करना, कराना और अनुमोदन)

तिदंड--तीन दंड से (मन से पाप करना मन दंड, वचन से दंड, काय से कायदंड)

विरयाण--विराम पाकर



भावार्थ

भरत, ऐरवत और महाविदेह क्षेत्रों में विद्यमान जो कोई साधु मन, वचन और काय से पापमय प्रवृत्ति करते नहीं, कराते नहीं तथा उस का अनुमोदन भी नहीं करते, उन्हें मेरा प्रणाम।



सूत्र परिचय

इस सूत्र द्वारा सब साधुओं को वंदना की गई है। अतः इसे 'सव्वसाहू-वंदन सूत्र' रूप में भी माना जाता है।

पंच परमेष्ठी में साधु का स्थान पांचवां है। पांचों परमेष्ठी आराध्य, पूज्य और श्रद्धेय हैं। साधु भगवंत की सेवाभक्ति से धर्माराधना में सतत जागृति रहती है। उनके चारित्र्य युक्त उपदेश से हमें धर्मनिष्ठ जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा प्राप्त होती है। ऐसे उपकारी मुनिराजों को इस सूत्र में नमस्कार किया गया है।



१६. संक्षिप्त पंचपरमेष्ठि नमस्कार

नमोऽर्हत्-

सिद्धाचार्योपाध्याय—

सर्वसाधुभ्यः ॥१॥



भावार्थ

श्री अरिहंतों को, श्री आचार्यों को, श्री उपाध्यायों को तथा सब साधुओं को नमस्कार हो।

सूत्र परिचय

यह नवकार मंत्र का संक्षिप्त सूत्र है। पंचप्रतिक्रमण के सूत्रों में प्रायः संभवतः यही सूत्र सर्वप्रथम संस्कृत भाषा में रचा गया है। इस सूत्र की रचना श्री सिद्धसेन दिवाकर सूरिजी की थी। गणधरकृत को शिष्ट भाषा मानकर संस्कृत में परिवर्तन करने की इच्छा से सबसे पहले उन्होंने इस सूत्र की रचना की। परन्तु इस के निमित्त आचार्य भगवान् को कठोर प्रायश्चित्त करना पड़ा था।



१७. उवसग्गहरं स्तवन (स्तोत्र)

उवसग्गहरं पासं,
पासं वंदामि–कम्म–घण–मुक्कं,
विसहर–विस-निन्नासं,
मंगल–कल्लाण–आवासं ॥१॥
विसहर-फुलिंग-मंतं,
कंठे धारेइ जो सया मणुओ,
तस्स गह-रोग-मारी
दुट्ठजरा जंति उवसामं ॥२॥
चिट्ठउ दूरे मंतो,
तुज्झ पणामो वि वहु–फलो होइ,
नर-तिरिएसु वि जीवा,
पावंति न दुक्ख दोगच्चं ॥३॥
तुह सम्मत्तेलद्धे,
चिंतामणि–कप्पपायवब्भहिए,

आरती

पावंति अविग्घेणं,
जीवा अयरामरं ठाणं ॥४॥
इअ संथुओ महायस !
भत्तिब्भर-निब्भरेण हियएण,
ता देव दिज्ज बोहिं,
भवे भवे पास ! जिणचंद ! ॥५॥



शब्दार्थ

उवसग्गहर–उपद्रवों के हरणकर्ता
पास- जिनका यक्ष पार्श्व है अथवा आशा के पाश से मुक्त
पास–२३ वें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ को
वदामि–वदना करता हू
कम्मघण मुक्क–कर्मदल से मुक्त
विसहर विस निन्नास–सर्पविश के हर्ता (मिथ्यात्वादि दोषों के नाशक)
मगलकल्लाण आवास–मगल कल्याण के आगार
विसहर फुलिंग मत–विषहर फुलिंग मत्र को
कठे धारेइ–कठ में धारण करते हैं
जो सया मणुओ–सदैव जो मनुष्य
तस्स–उनका
गहरोग मारी दुट्ठजरा–ग्रह, महारोग,
प्लेग, मारण–प्रयोग, विषम ज्वर
जति उवसाम–शात हो जाते हैं
चिट्ठउ दूरे मतो–मत्र तो दूर रहे
तुज्झ पणामोवि–आपको प्रणाम भी
बहुफलो होइ–अति फलदायक होता है
नरतिरिएसु–मनुष्य व तिर्यच गति में
वि–भी
जीवापावति न–जीव प्राप्त नहीं करते
दुक्ख दोगच्च–दु ख और दुर्गति (दुर्दशा)
तुह–तुम्हारा
सम्मत्ते लद्धे–सम्यग्दर्शन प्राप्त होने पर
चितामणि कप्पपाय वब्भहिए–चितामणि और कल्पवृक्ष से अधिक

पावंति--प्राप्त करते हैं
अविग्घेणं--निर्विघ्न रूप से
जीवा--जीव, प्राणी
अयरामरं ठाणं--अजर, अमर स्थान
इअ--इस प्रकार
संथुओ--स्तुति की है
महायस--हे महायशस्विन् !
भत्तिभर निब्भरेण--भक्तिसमूह से युक्त
हियएण--हृदय से
ता देव दिज्ज--अतः हे देव ! दो
बोहिं--बोधि, सम्यक्त्व
भवे भवे--प्रत्येक भव में
पास जिणचंद--हे पार्श्वनाथ जिनचंद्र !



भावार्थ

जो उपद्रवों के हर्ता पार्श्व यक्ष वाले हैं, अथवा जो स्वत उपद्रवहर हैं और आशाओ से मुक्त हैं, चारों घाति कर्म से रहित हैं, जो नामस्मरण द्वारा सर्पो का विष दूर करते हैं, (जो मिथ्यात्व आदि दोषो को दूर करते है) तथा जो मगल और कल्याण के धामरूप है, ऐसे पार्श्वनाथ भगवान् को मैं नमन करता हू ॥१॥

'विसहर फुलिंग' नामक मत्र का जो मानव हमेशा एकाग्रचित्त से जाप करते हैं उनके दुष्ट ग्रह, अनेकविध रोग, महामारी और विषम ज्वर दूर हो जाते हैं- मिट जाते हैं ॥२॥

उस मत्र की बात को एक ओर छोड दें, तो भी हे पार्श्वनाथ भगवन् आपको किया गया भावों से ओत प्रोत नमस्कार भी बहुत फल देता है। उससे मनुष्य व तिर्यच गति के जीव किसी प्रकार के दु ख और दुर्दशा का शिकार नहीं होते ॥३॥

चिंतामणि रत्न और कल्पवृक्ष से भी अधिक शक्तिशाली आपका सम्यकत्व प्राप्त करने से जीव सरलता से मुक्तिपद को प्राप्त कर लेते हैं ॥४॥

इस प्रकार हे पार्श्व जिनचन्द्र ! हे महा यशस्विन् मैंने ! भक्तिपूर्ण हृदय से स्तुति की है। अत हे देव ! इसके प्रभाव से मुझे भव भव मे सम्यक्त्व (सुदेव, सुगुरु, सुधर्म पर श्रद्धा) प्रदान करो ! ॥५॥



सूत्र परिचय

उपसर्गों का, दुःख-संकटों का हरण करने तथा सूत्र के प्रथम शब्द के कारण इस सूत्र को उवसग्गहरं सूत्र कहते हैं।

इस सूत्र में २३ वे तीर्थंकर देव श्री पार्श्वनाथ भगवान् को वंदना करके उनकी स्तुति की गई है। यह उत्कट प्रार्थना भी की गई है कि उनकी भक्ति के प्रभाव से भव भव में सम्यक्त्व प्राप्त हो।

यह मंत्र-स्तोत्र है। नवस्मरण में इसका स्थान द्वितीय हैं। स्तोत्र के पदों के मंत्र गुप्त हैं। श्रद्धापूर्वक इस स्तोत्र का नित्य और सतत स्मरण करने से भौतिक तथा आध्यात्मिक दुःख और पीडाएँ दूर हो जाती हैं। आत्मा में सम्यग्दर्शन आदि का बल बढ़ता है। इस सूत्र के रचयिता आचार्य श्री भद्रबाहु स्वामी हैं।

इस सूत्र की प्रथम गाथा का विषय विशिष्ट गुणयुक्त प्रभु हैं। दूसरी का विषय उनका विसहर फुलिंग मंत्र हैं। तीसरी में उन्हें नमस्कार किया गया है। चौथी का विषय उनका सम्यक्त्व है। पांचवी का विषय भक्ति-पूर्वक बोधि की याचना है। इस प्रकार प्रभु का स्वरुप-मंत्र-नमस्कार-सम्यक्त्व और भक्ति प्रभाव संपन्न है।



१८ जयवीयराय सूत्र

जयवीयराय जगगुरु !
होऊ ममं तुहपभावओ भयवं,
भव-निव्वेओ मग्गाणुसारिआ
इट्ठफलसिद्धि ॥१॥
लोग विरुद्धच्चाओ,
गुरुजणपूआ परत्थ करणं च,
सुहगुरुजोगो तव्वयणसेवणा
आभवमखंडा ॥२॥
वारिज्जइ जइ वि नियाणबंधणं
वीयराय ! तुह समये,
तह वि मम हुज्ज सेवा,
भवे भवे तुम्ह चलणाणं ॥३॥
दुक्खक्खओ कम्मक्खओ,
समाहिमरणं च बोहिलाओ अ,

संपज्जउ मह एअं,
तुह नाह ! पणामकरणेणं ॥४॥
सर्वमंगल–मांगल्यं,
सर्वकल्याणकारणं,
प्रधानं सर्वधर्माणां,
जैनं जयति शासनम् ॥५॥



शब्दार्थ

जय हो (आपकी मेरे हृदय में)
वीयराय हे वीतराग !
जयगुरु -जगद्गुरु !
होउ–हो
मम–मुझे
तुह–आपके
भावओ–प्रभाव से
भयव–हे भगवन् !
भवनिव्वेओ–भवनिर्वेद
मग्गाणु सारिआ–मोक्ष मार्ग के अनुकूल वृत्ति
इट्ठफल सिद्धि -इष्टफल सिद्धि
लोगविरुद्धच्चाओ–लोकनिंद्य प्रवृत्ति का त्याग
गुरुजणपूआ–गुरुजन–धर्मगुरु, विद्यागुरु, मा बाप आदि बड़ो की सेवा
परत्थकरण च–तथा परोपकार सेवा
सुहगुरुजोगो–सच्चरित्र गुरु का योग
तव्वयण सेवणा–उनके आदेशानुसार व्यवहार
आभव–ससार भ्रमण पर्यन्त अथवा जन्मान्त तक
अखंड–अखंड रूप से
वारिज्जइ–निषेध किया है
जइवि–यद्यपि
नियाण–निदान (सामारिक वस्तु को प्राप्ति की धारणा)
बंधन–निश्चय करना
तुह -आपके
समये–शास्त्र मे
तहवि–तो भी

मम–मुझे
हुज्ज–प्राप्त हो
सेवा--उपासना
भवे भवे–प्रत्येक भव में
तुम्ह–आपके
चलणाणं–चरणों की
दुक्खक्खओ--भाव दुःख (कषाय, मनोविकार, दीनता) का नाश
कम्मक्खओ–कर्मों का नाश
समाहिमरणं--समाधि पूर्वक मरण
बोहिलाभो--बोधिका लाभ
अ–तथा
संपज्जउ--प्राप्त हो
मह--मुझे
एअं–यह
तुहनाह–हे नाथ ! आपको
पणाम करणेणं–प्रणाम करने से
सर्वमंगल–समस्त मंगलों का
माङ्गल्यं–मंगल भाव रूप
सर्वकल्याणकारणं–समस्त कल्याणों का कर्ता
प्रधानं–श्रेष्ठ
सर्वधर्माणां–सभी धर्मों में
जैन–जिनेश्वर देव का
जयति–जयवान् रहता है
शासनम्–शासन



भावार्थ

हे वीतराग जगद्गुरु ! आप मेरे हृदय में जयवान् रहें, आपकी जय हो। हे भगवन्। आपके प्रभाव से मेरा 'भवनिर्वेद' अर्थात् ससार के प्रति वैराग्य जागरित रहे। अरुचि–नापसदगी की वृत्ति स्थिर रहे। मार्गानुसारिता अर्थात् मोक्षमार्ग के अनुकूल वृत्ति तथा व्यवहार जारी रहे। अथवा तत्वानुसारित–निस्सार बात छोडकर तात्त्विक बात का आग्रह हो। इष्टफलसिद्धि–देवदर्शनादि मोक्ष मार्ग की साधना चित्त की स्वस्थतापूर्वक होती रहे, इस हेतु आवश्यक इष्टफल (आजीविकादि) सिद्ध हो ॥१॥

हे प्रभो ! मुझे ऐसी शक्ति प्राप्त हो कि जिससे मेरा मन 'लोकविरुद्ध' लोकनिंद्य–जिससे लोक को सक्लेश हो ऐसा कोई कार्य करने का लोभ न करे, गुरजनों के प्रति आदर और सेवाभाव रखे, परोपकार–परहित करता रहे।

हे प्रभो ! मुझे सच्चरित्र सद्गुरु की सगति मिले, उनके कथन के आचरण का लाभ प्राप्त हो। यह सब कुछ मुझे इस जन्म के अत तक अथवा ससार परिभ्रमण पर्यन्त प्राप्त होता रहे ॥२॥

हे वीतराग ! यद्यपि आपके प्रवचन मे नियाण अर्थात् तप जप के पौद्गलिक फल की निधारित कामना करने का निषेध है, तो भी मेरी यही अभिलाषा है कि मुझे प्रत्येक भव मे आपके चरणों की सेवा करने का सयोग मिले ॥३॥

हे नाथ ! आपको प्रणाम करने से मेरे भावदुःख का (कषाय–मनोविकार–दीनता–क्षुद्रतादि का) नाश हो। कर्म का क्षय (कर्मनिर्जरा के मार्ग के प्रति आदर भाव) हो। मरण के समय समाधि (मन की राग–द्वेष-

हर्ष--खेद के बिना की स्थिति) रहे, तथा (परभव में) बोधिलाभ अर्थात् जैनधर्म की उपलब्धि हो ॥४॥

सभी मंगलों में मंगलभाव लाने वाला, समस्त कल्याणों का कारणरूप तथा सब धर्मों में श्रेष्ठ जैन शासन विजयी रहे ॥५॥



सूत्र परिचय

इस सूत्र में भगवान् का जयनाद करके भक्त भगवान् से प्रार्थना करता है कि वे उसके हृदय में जयशील रहें। भगवान् की अचिन्त्य शक्ति के प्रभाव से निष्पन्न होनेवाली वस्तुओं में उसे क्या क्या चाहिए, किस किस की उत्कट अभिलाषा है, उसकी एक सूची इस सूत्र में प्रभु के सन्मुख प्रस्तुत की गई है।

इस सूत्र में वर्णित प्रार्थना और अभिलाषा को सर्वोत्तम कहा जा सकता है। यह सूत्र स्पष्टतः चित्रित करता है कि भगवान् से ऐसी शक्ति की ही याचना की जाए जिससे स्व-पर आत्मकल्याण हो। तप, भक्ति आदि करके किसी भौतिक सुख की मांग न करते हुए भव भव में प्रभुसेवा की ही प्रार्थना की गई है। भगवान् को प्रणाम करके इस जीवन के अंत तक आत्मा के भावदुःख (कषाय, विषयासक्ति, मनोविकार, दीनता आदि)

का नाश तथा कर्म निर्जरा का कारणरूप १२ प्रकार का तप, जीवनान्त समय समाधिमरण, तदुपरात बोधि–लाभ–जैनधर्म की आत्मा में परिणति --इष्ट है।

इस प्रार्थना से जीवन सरल, निर्मल, ऊर्ध्वगामी बनता है। श्रद्धा अधिक बलवती होती है। यह विश्वास दृढ होता है कि अरिहत प्रभु हमारी समस्त शुभ धारणाओं को सफल करने में अचिंत्य बल और प्रभाव युक्त हैं।

अंत में इस निष्ठा के साथ आह्लाद व्यक्त किया गया है कि इन सब बातों को सिद्धि प्रदान करनेवाला श्रेष्ठ मगलरूप एव सर्वकल्याणकारी जैन शासन जयशील है।

यह प्रार्थना सूत्र नहीं किंतु प्रणिधान या उपासना सूत्र है। प्रार्थना से यह फलित होता है कि सन्मुख व्यक्ति को जब तक प्रार्थना न की जाए तब तक वह दयाशून्य है और प्रार्थना करने पर इष्टपूर्ति की दया करने वाला रागी है। वीतराग भगवान् ऐसे रागद्वेष से रहित होते हैं। अत इस सूत्र में प्रणिधान है। अर्थात् अपनी शुभ उत्कट कामना पर मन केंद्रित होता है कि यह आशसा–इच्छा अरिहत के प्रभाव से पूर्ण हो। यह भी व्यक्त किया गया है कि वह पूर्ण हो।

जयवीयराय सूत्र प्रार्थना सूत्र न होकर प्रणिधान सूत्र है। प्रार्थना में वीतराग से कुछ मागा जाता है उससे यह फलित होता है कि मागे तो वीतराग प्रसन्न हो और माग पूरी करे। ऐसी प्रसन्नता में वीतरागता खडित होती है।

प्रणिधान अर्थात् भवनिर्वेद आदि विषय पर मन का केन्द्रीकरण, उनकी तीव्र अभिलाषा, 'मुझे यह चाहिए' ऐसा मन का उपयोग, ऐसी धारणा कि यह वीतराग के प्रभाव से मिलता है। इस प्रकार भगवान के प्रभाव की

स्तुति की जाती है। इस स्तुति के अर्थ में इसे प्रार्थना कह सकते हैं। इस सूत्र का पाठ करते समय मन में यह भाव होना चाहिए कि मुझे 'भव निर्वेद' चाहिए। मार्गानुसारिता चाहिए, इष्टफलसिद्धि चाहिए...इत्यादि। यह दृढ विश्वास हो कि इसकी प्राप्ति भगवत्-प्रभाव से होती है।

'आभवमखंडा' तक भवान्त तक की वस्तु की तीव्र इच्छा प्रगट करके, 'वारिज्जइ' गाथा में जन्म जन्मांतर के लिए भगवत् चरण सेवा की दृढ आशा व्यक्त की गई है। प्रत्येक जन्म में यह मिले, इस हेतु से बाद की 'दुक्खक्खओ' गाथा में चार इच्छाएँ प्रगट हैं :—वीतराग के प्रणाम से १. मानसिक दुःख का क्षय, २. कर्मक्षय अथवा सकाम निर्जरा, ३ समाधि-मरण ४. बोधिलाभ।

पहली इच्छा में प्रत्येक वर्तमान समय के लिए मानसिक दुःखक्षय की कामना कर, दूसरी में आजीवन सकाम निर्जरा (१२ प्रकार के तप की निराशंस साधना) की अभिलाषा व्यक्त कर तीसरी में जीवन के अंतिम चरण में समाधिमरण और चौथी में परलोक के लिए बोधिलाभ की अभिलाषा अंकित की गई है।

'सर्व मंगलमाङ्गल्यं' में जिन शासन के प्रभाव की अनुमोदनाके साथ हर्ष प्रगट किया गया है कि शासन जयवान् हो।



१९. अरिहंत चेइआणं (चैत्यस्तव) सूत्र

अरिहंत—चेइआणं करेमि
काउसग्गं ॥१॥
वंदणवत्तिआए,
पूअणवत्तिआए,
सक्कारवत्तिआए,
सम्माणवत्तिआए,
वोहिलाभवत्तिआए,
निरुवसग्गवत्तिआए ॥२॥
सद्धाए, मेहाए, धिइए,
धारणाए अणुप्पेहाए वड्ढमाणीए,
ठामि काउस्सग्गं ॥३॥



शब्दार्थ

अरिहंत चेइआणं—अरिहंत प्रतिमाओं का

करेमि—करना चाहता हूं

काउस्सग्गं—कायोत्सर्ग

वंदणवत्तिआए—नमस्कार के निमित्त

पूअणवत्तिआए—पुष्पादि पूजा ,, ,,

सक्कारवत्तिआए—वस्त्रालंकार सत्कार ,, ,,

सम्माणवत्तिआए—गुणगान से संमान ,, ,,

बोहिलाभवत्तिआए—बोधिलाभ ,, ,,

निरुवसग्गवत्तिआए—उपद्रवरहित मोक्ष के निमित्त

सद्धाए--श्रद्धा से

मेहाए--बुद्धि से

धिइए--चित्त की स्वस्थता से

धारणाए--धारणा से

अणुप्पेहाए--सूत्रोपरांत चिंतन से

वड्ढमाणीए--बढ़ती हुई

ठामि काउस्सग्गं--कायोत्सर्ग करता हूं



भावार्थ

अरिहत चैत्यो अर्थात् जिन प्रतिमाओं के वदन, पूजन, सत्कार, समान के लाभ, सम्यकृत्व, बोधिलाभ तथा मोक्ष के निमित्त मैं काउस्सग्ग करना चाहता हू। बढ़ती हुई श्रद्धा, प्रज्ञा, स्थिरता, स्मृति एव सूत्रार्थ चिन्तन द्वारा मैं काउस्सग्ग मे स्थिर होता हू।

इसमें वदन, पूजन, सत्कार, सन्मान, बोधिलाभ तथा मोक्ष ये छ कायोत्सर्ग के निमित्त, प्रयोजन या उद्देश्य हैं। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए कायोत्सर्ग है। वदन, पूजन, सत्कार, सन्मान किसका? अर्हंत चैत्यो अथवा प्रतिमाओ का।

'वदणवत्तिआए' से 'सम्माणवत्तिआए' तक केवल चार पदो तक 'अरिहत चेइआण' पद जोडा जाता है। चार पदो के साथ इसे बोलकर स्वाभाविक रूप से रुकना चाहिए। तत्पश्चात् 'बोहिलाभ॰निरुवसग्ग॰' ये दो पद साथ बोले।

यहा बोधिलाभ का अर्थ केवल सम्यक्त्व नहीं, किंतु जैन धर्म की प्राप्ति अर्थात् सम्यकृत्व से लेकर वीतरागता तक का धर्म है। अन्यथा-क्षायिक सम्यकृत्व अर्थात् सम्यक्त्व युक्तजीव इस पद को क्यों कहे? परन्तु इससे बढ़कर देशविरति से वीतरागता तक का धर्म इष्ट है, इस आशा से इस पद का पाठ किया जाता है। अत इन सबका समावेश बोधिलाभ में होता है।

अन्त के पांच पद 'सद्धाए' आदि हेतु पद हैं। ये हेतु अथवा साधन की सूचना देते हैं। कायोत्सर्ग के लिए ये श्रद्धादि पाच साधना आवश्यक हैं।



सूत्र परिचय

हम जीवन में मोहवश, लोभवश अनेक व्यक्तियों का राग, आदर, सत्कार बहुमान करते हैं। फलतः इन राग के बंधनों से बद्ध हुए हम संसार में जन्ममरण के पात्र बनते रहते हैं। रागादि के बंधन से छुटने पर ही जन्म-मरण रुक सकता हैं। इस छुटकारे के लिए वीतराग भगवान् पर राग करना चाहिए, वही सरागीयों के प्रति राग से हमें मुक्त करने में समर्थ हैं। किंतु वीतराग पर राग स्थिर करने के लिए वीतराग के प्रति आदर, सत्कार, बहुमान आवश्यक है। यह देखा गया है कि संसार के आदर सत्कार से राग दृढ होता है, बढता है। तो फिर वीतराग पर राग केंद्रित करने, बढ़ाने के लिए उनका आदर सत्कारादि क्यों न किया जाए? इसी हेतु जिन, वीतराग की पूजा, भक्ति आदि अनिवार्य है।

इस समय वीतराग भगवान् यहां विचरते नहीं। अतः उनकी मूर्ति का दर्शन, वंदन, पूजा, भक्ति, आदर, बहुमान आदि करना वीतराग का ही दर्शन आदि है। देखा गया है कि सरस्वती के चित्र के दर्शन और नमस्कार से सरस्वती के प्रति भावना बढ़ती है, उससे बुद्धि विकसित होती है। महान् देश रक्षकों की तस्वीर देखकर सेना को प्रेरणा प्राप्त होती है तथा वंदना करने से जोश या बल मिलता है। तब इस बात में कोई नवीनता नहीं कि जिन प्रतिमा के दर्शन से साक्षात् जिनकी प्राप्ति का भाव विकसित हो। यह ठीक है कि आदर, सत्कार, बहुमान जिनेन्द्र भगवान् की मूर्ति का है। किन्तु हमारे मन में यह आदरादि वस्तुतः जिनेन्द्र भगवान् के प्रति है। यह बात भी स्पष्ट है कि असत् का राग, आदर कम करने के लिए जिन-वीतराग के प्रति बहुमान आदि साधन है। किंतु जिन की प्रतिमा के अभाव में जिन का राग, आदर, सत्कार, बहुमान, पूजन आदि कैसे किया जायगा? सारांश यह है कि जिन-पूजासत्कार से जीवन

भरपूर होना चाहिए। कमसे कम दिन में एक बार तो जिनपूजा करनी ही चाहिए।

प्र —श्रावक ने मदिर मे पूजा कर ली। अत पूजा का लाभ मिल गया। अब पुन कौन सा लाभ के लिए कायोत्सर्ग करना ?

उ — दूसरे लोग इन अरिहत चैत्यो का जो वदन, पूजन, सत्कार, समान करते है, उनका अनुमोदना से लाभ लेने के लिए यह कायोत्सर्ग है। तब यह भान होता है कि जीवन मे अरिहतों की वदनादि कितनी अधिक महत्वपूर्ण और आराध्य है। अतएव उनकी अत्यधिक और बिना सतुष्ट हुए आराधना करते रहना चाहिए। श्रावक इस जिनपूजा सत्कार का लोभी बना रहे, कभी भी सतोषी नहीं।

अरिहत प्रभु का भक्त केवल स्वय प्रभु की मूर्ति का भजन करके ही सतुष्ट नहीं होता, प्रत्युत वह इस बात के लिए भी उत्कठित रहता है कि जिन मूर्ति का वदन, पूजन, सत्कार, समान करनेवाले इतर जनो का अनुमोदन कर लाभ ले लो। इसी हेतु वह कायोत्सर्ग करता है। विशेषत बोधिलाभ अथात् सम्यक्त्व से लेकर वीतरागता तक की जैनधर्म की प्राप्ति के निमित्त तथा सर्वथा उपद्रव रहित मोक्ष के निमित्त यहा कायोत्सर्ग किया जाता है। कायोत्सर्ग तो छोटा है, किंतु इससे अपनी वदनादि की उत्कट इच्छा प्रगट होती है।

कायोत्सर्ग के ध्यान मे साधनभूत श्रद्धा, मेधा आदि आवश्यक हैं। उसमें भी बढ़ती हुई श्रद्धा, मेधा आदि साधनों द्वारा कायोत्सर्ग का ध्यान करना है। वह इस प्रकार —

कायोत्सर्ग मे जिस नवकार, लोगस्स का ध्यान किया जाता है, पहले चरण में उसके लिए यह श्रद्धा होनी चाहिए कि इसका ठीक ठीक ध्यान

करने से दूसरों के द्वारा की जानेवाली वंदनादि से फलित कर्मक्षय का लाभ अवश्य मिलता है। अपि च, यह कायोत्सर्ग ध्यान मेधा से करना चाहिए अर्थात् शास्त्रद्वारा विकसित हुई प्रज्ञा से। इससे ध्यान के विषय-विशेष का चिंतन बुद्धिपूर्वक होगा। इसी प्रकार धृति अर्थात स्थिरता से ध्यान करना चाहिए। ध्यान धारणापूर्वक भी करना चाहिए इससे यह ख्याल रहता है कि कितना कितना ध्यान हो गया। ध्यान अनुप्रेक्षा अर्थात अर्थ चिंतन से भी करना चाहिए, इससे आत्मा विशुद्ध होती है। उससे परमात्म स्वरूप का अभेद ध्यान में स्थिर होता है। अभेदानुभव के विकास से आत्मा परमात्मा, जीव शिव, जैन जिन बन जाता है। परमात्म भक्ति में वृद्धि और समाधि की शिक्षा के लिए इस सूत्र का चिंतन-मनन आवश्यक है।

(स मा प्त)



चैत्यवंदन की विधि

१ सर्वप्रथम मन्दिरजी मे तीन खमासमण देना। तत्पश्चात् बाया घुटना खड़े रखकर उत्तरासन डालकर दो हाथ जोडे रहना। 'इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! चैत्यवंदन करं ? 'इच्छं'

२ 'सकलकुशलवल्ली' बोलकर चैत्यवंदन करना। फिर

३ 'जंकिंचि' कहकर 'नमुत्थुण' कहना। तत्पश्चात्

४ मस्तक पर दो हाथ जोडकर 'जावंतिचेइआइं', कहकर एक खमासमण।

५ 'जावंत केवि साहू' कहकर 'नमोऽर्हत्' बोलना। बाद में

६ स्तवन गाना या 'उवसग्गहर' का पाठ पढ़ना फिर

७ मस्तक पर दोनों हाथ जोडकर 'आभवमखण्डा तक 'जयवीयराय' सूत्र पढ़कर दोनों हाथ नीचे करके जयवीयराय का शेष भाग पढ़ना। तदुपरांत

८ खड़े होकर 'अरिहंतचेइआणं' बोलकर अन्नत्थ के पाठ के पश्चात एक नवकार का काउसग्ग।

९ इसके अनन्तर काउसग्ग पारकर नमोऽर्हत्' कहना। फिर थुई, स्तुति पढ़ना। तदुपरांत सकलसंघ के लिए तीन खमासमण देना। [इससे हम दूसरों को कह भी सकते हैं कि तुम्हारे लिए भगवान का दर्शन, वंदन किया था। इसमें हमारी अनुमोदना भी रहती है।]



जिनपूजा

पुष्प, अक्षत, गंध (वास-चूर्ण आदि) धूप और दीपक इन पांच द्रव्यों से पांच पापों को चूर्ण करनेवाली पंचप्रकारी पूजा होती है। पुष्प, अक्षत, गंध, दीपक, धूप, नैवेद्य, फल और जल इन आठ द्रव्यों से की गई अष्टकर्म का दलन करनेवाली अष्टप्रकारी पूजा होती है। स्नात्र, अर्चन, वस्त्र तथा आभूषण आदि से, फल, नैवेद्य, दीपक आदि से तथा नाटक, गीत, आरती आदि द्वारा सर्वप्रकारेणसर्वप्रकारी पूजा होती है। (चैत्यवंदन भाष्य)

जिन पूजा, द्रव्य पूजा और भाव पूजा-इस रीति से दो प्रकार की भी होती है। उनमें पुष्पादि पुद्गल द्रव्यों से की जानेवाली द्रव्य पूजा है और जिनेश्वर देव की आज्ञा का पालन करना भावपूजा है।

(संबोध प्रकरण)



जिनपूजा का फल

श्री जिनमंदिर जाने की इच्छा होनेपर एक उपवास का, वहा जाने की तय्यारी करने से दो उपवास का, जाने के लिए पग उठाने पर तीन उपवास का फल मिलता है। श्री जिनमंदिर की ओर प्रस्थान करने से चार उपवास का, थोडा चल लेनेपर पाच का, मार्ग में पन्द्रह का और मंदिरजी के दर्शन होनेपर एक मास के उपवास का फल मिलता है।

मंदिरजी में प्रभु के निकट पहुचने पर छमासी तप का तथा मंदिरजी के द्वार पर नमस्कार करने से एक वर्ष के उपवास का फल मिलता है।

मंदिरजी की प्रदक्षिणा देते समय एक सौ वर्ष के उपवास का, श्री जिन भगवान् की पूजा करने से एक हजार वर्ष के उपवास का तथा उनकी स्तुति से अनन्त पुण्य उपलब्ध होता है। (पद्‌मचरित्र)



जिनपूजा

जिसमें मनुष्य निवास करता है उसे मकान कहते हैं। जहां भगवान की प्रतिमा विराजमान की जाती है, उस स्थान को मंदिर कहते हैं। चैत्य, देरासर, मंदिर ये सब पर्यायवाची शब्द हैं। जहां जिनेश्वर भगवान की मूर्ति अथवा जिन प्रतिमा स्थापित की जाती है, उसे जिनमंदिर या जैनदेरासर कहते हैं। इस जिन प्रतिमा की प्रभु के च्यवन, जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान और निर्वाण–इन पांच कल्याणक प्रसंगों के उत्सव आदि द्वारा अंजनशलाका विधि की होती है। अतः यह प्रतिमा जिनेश्वर रूप बन जाती है। उसी अवस्था में ही यह पूजनीय, वंदनीय है।

जिनमंदिर अर्थात् जिनेश्वर–वीतराग तीर्थंकर परमात्मा की पूजा और उपासना का, सेवा और भक्ति का पवित्र धाम। जिन मंदिरों में पवित्र मंत्रोच्चार पूर्वक अंजनशलाका विधि द्वारा जिस जिनमूर्ति में प्राणप्रतिष्ठा की गई हो, उसे पवित्र और आनंद दायक वातावरण में पूज्य श्रमण भगवंतों की निश्रा में आसनपर प्रतिष्ठित किया जाता है। इससे जिन मंदिरों के कोने कोने में, उनके समस्त वातावरण में ऐसा दिव्य प्रभाव होता है कि उससे हृदय के भाव शुद्ध होते हैं और अन्तर की भावना जागरित होती है।

ऐसे जिनमंदिर में विराजमान जिनप्रतिमा को केवल प्रतिमा अथवा मूर्ति नहीं समझना चाहिए। उसे साक्षात् जिनेश्वर भगवान् समझकर आंतरिक उल्लास से उसका चरणस्पर्श करना चाहिए। हमें उसकी पूजा भक्ति उत्तम द्रव्यों से करनी है, उसके गुणों की भावभीनी स्तुति करनी है। इस प्रकार वीतराग भगवान् की भावपूर्ण हृदय से भक्ति–उपासना करते करते हमारे विषय भोग के पाप, रागद्वेषादि दोष और हिंसा, झूठ

आदि दुष्कृत्य घटते जाते हैं, आत्मतेज बढता जाता है और अंत में सर्वपाप त्याग का संयम जीवन प्राप्त होता है।

भक्ति में असीम शक्ति है। भगवान् की भक्ति करने से जीवन में आमूल परिवर्तन होता है। परमात्मा की पूजा करते करते कालक्रमेण मनुष्य परमात्मा बन जाता है। भक्ति उसे कहते हैं जिससे भगवान् के तुल्य स्वरुप उपलब्ध हो। पूजा वह है जिसमे आत्मा पूज्य परमात्मा का स्वरूप प्राप्त करे। जिन प्रतिमा की पूजा और भक्ति से हमें स्वय जिनेश्वर बनना है। सक्षेप में जिनप्रतिमा जिनेश्वर बनने के लिए उत्तम आलवन है।



जिनपूजा की सामान्य विधि

१. स्नान करके पूजा के निमित्त अलग स्वच्छ साफ सुथरे वस्त्र पहन कर जिन मंदिर में जाना। जिन पूजा के समय पुरुषों को धोती और दुपट्टे का प्रयोग अवश्य करना चाहिए।

२. जिन पूजा के समय की अवधि में अर्थात् घर से मंदिरजी जाते समय, मंदिरजी से घर आते समय तथा मंदिरजी में ठहरने के साथ तक जिनेश्वर भगवान् के जीवन प्रसंगों और उसके उपदेशवचनों के अतिरिक्त किसी अन्य विषय या बात का विचार नहीं करना, मन में सतत भगवान् के नाम का रटन करना, उनके गुणों का चितन करना।

३. जिन पूजा के लिए अपना ही केसर, धूप, अगरबत्ती आदि द्रव्यों का उपयोग करना चाहिए। ऐसी अनुकूलता या सुविधा न हो तो मंदिर जी की पेढी की ओर से बेचे जानेवाले इन द्रव्यों से पूजा करना। जिन-पूजा के लिए अगरबत्ती, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, फल तथा घी का दीपक आदि ले जाना चाहिए।

४. जिनपूजा करते समय दुपट्टे के किनारे से आठ परत (तह) करके मुँह और नाक बांधना, शान्त चित्त से हम पर भगवान् द्वारा किए गए उपकारों का स्मरण करते हुए उनके नव अंगों की पूजा करना। ये नवांग क्रमशः इस प्रकार है :—

१. चरण २. घुटना ३. कलाई ४. स्कंध या कंधा ५. मस्तक का मध्य भाग ६. ललाट ७. कंठ ८. हृदय ९. नाभि।

जिनेश्वर भगवान् के इन नव अंगों की पहले केसर से पूजा करना और तत्पश्चात् चरणों, घुटनों, कंधों, मस्तक और हाथ में पुष्प चढ़ाना।

प्रभु के नवांग की पूजा करते समय क्रमश निम्नलिखित दोहे पढने चाहिए —

जल भरी संपुट पत्रमा, युगलिक नर पूजंत
ऋषभ चरण अंगूठडे, दायक भवजल अंत ॥१॥
जानुबले काउस्सग्ग रह्या, विचर्या देश विदेश,
खडा खडा केवल लह्यु, पूजो जानु नरेश ॥२॥
लोकांतिक वचने करी, वरस्या वरसी दान,
कर कांडे प्रभु पूजना, पूजो भवि बहुमान ॥३॥
मान गयु दोय अंसथी, देखी वीर्य अनंत,
भुजाबले भवजल तर्या, पूजो खंध महंत ॥४॥
सिद्धशिला गुण ऊजली, लोकांते भगवंत,
वसिया तिणे कारण भवि, शिर शिखा पूजंत ॥५॥
तीर्थंकर पद पुण्यथी, तिहुयण जन सेवंत,
त्रिभुवन तिलक समाप्रभु, भालतिलक जयवंत ॥६॥
सोल पहोर प्रभु देशना, कंठ विवर वर्तुल,
मधुर ध्वनि सुरनर सुने, तिन गले तिलक अमूल ॥७॥
हृदयकमले उपशमबले, बाल्या राग ने रोष,
हिम दहे वनखंड ने, हृदय तिलक संतोष ॥८॥
रत्नत्रयी गुण उजली, सकल सुगुण विश्राम,
नाभि कमलनी पूजना, करता अविचल धाम ॥९॥
उपदेशक नव तत्त्वना, तिणे नव अंग जिणंद,
पूजो बहुविध भावथी, कहे शुभवीर मुणींद ॥१०॥



भावार्थ

जिस प्रकार संपुट (अंजलि) में जल लेकर युगलिओं ने भ. ऋषभदेव के चरणों के अंगूठे की पूजा की थी, हे भक्तो ! उसी प्रकार तुम भी पूजाकर भवरूपी सागर पार करो ॥१॥

जो घुटनों के बल से काउस्सग्ग ध्यान में स्थिर रहे, देश–विदेश में विचरण करते रहे और जिनपर खड़े रहकर उन्होंने केवल ज्ञान प्राप्त किया, उन जगतस्वामी के घुटनों की (हे भविजन) पूजा करो ॥२॥

जिस हाथ से प्रभु ने लोकांतिक देवों की प्रार्थना के पश्चात् वर्षी दान दिया, उसकी सबहुमान पूजा करो ॥३॥

प्रभु के अनन्त वीर्य की शक्ति देखकर दोनों कन्धों से अभिमान नष्ट हो गया, अपने अनन्त भुजबल से–पराक्रम से प्रभु भवरूपी जल से पार होगए। उन महान् कन्धो की पूजा करो ॥४॥

लोक के अंत में गुण से उज्वल–शुद्ध सिद्ध शिल है। वहां भगवान् का निवास है। इसीलिए भव्यलोग शिर-शिखा मस्तक की पूजा करते है ॥५॥

तीर्थंकर नामकर्म रूपी पुण्य के प्रभाव से तीनों लोक के जीव जिनकी पूजा करते हैं, उन त्रिभुवनपूज्य जगत् शिरोमणि प्रभु के ललाटपर तिलक करो जिससे तुम जयशील बनोगे ॥६॥

जिस कंठ के भीतरी खोखले या पोले भाग से वाणी निःसृत कर प्रभु ने उपदेश दिया, जिसकी मधुर ध्वनि सुनकर मानवो और देवों ने अमूल्य लाभ प्राप्त किया, उस कंठ पर तिलक करो। वह तुम्हें अनमोल लाभ देने वाला है ॥७॥

जिस प्रकार (शीतल होनेपर भी) हिम--बरफ पडने से वन का भाग जल जाता है--नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार (शीतल होनेपर भी) उपशम बल से--समरस भाव से हृदय कमल में प्रगट हुई अत्यत शांति--शीतलता से रागद्वेष रूप कर्मवन को भगवान् ने दग्ध कर दिया। ऐसे प्रभु के हृदय पर तिलक लगाकर तुम सतुष्ट हो ॥८॥

जिन नाभिस्थान पर स्थित कमल के ध्यान से समस्त सरसगुणो के भाजक (पात्र) रूप ज्ञान, दर्शन चारित्रमय शुद्ध रत्नत्रयी की प्राप्ति होती है, उस नाभि कमल की पूजा करो। इसे करने से अविचल धाम अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति होती है ॥९॥

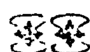
प्रभु नवतत्व उपदेश हैं। अत जिनेश्वर प्रभु के नवागों की अनेक प्रकार से (केसर, कुसुम आदि द्वारा) पूजा करो। मुनियों मे इन्द्र समान जगत्वत्सल श्री वीर प्रभु का ऐसा कथन है।

('शुभवीर' इस पद से श्री शुभ विजय के शिष्य श्री वीरविजय जी कवि का नाम सूचित होता है। ॥१०॥



नवाङ्ग का परिचय और प्रार्थना

उपाध्याय श्री वीर विजय जी ने इन दोहों में भगवान के द्वारा किए गए, त्याग और साधना का वर्णन किया है। चौबीस तीर्थंकरों में से किसी भी भगवान् की तिलक पूजा करें उस समय जिस अंग का स्पर्श किया जाय निम्नलिखित प्रकार से भगवान् के जीवंत चित्र की मन में कल्पना या विचारणा करनी चाहिए।



चरण

हे भगवान ! भव्य जीवो को प्रतिबोधित करने के लिए आपने अनेक स्थानों में विहार किया। हमपर आपका असीम और अनन्त उपकार है। अतः आपके चरण धोकर पान करने योग्य हैं।

हे भगवन्। आपकी चरण पूजा के प्रभाव से मुझे ऐसी शक्ति प्राप्त हो कि जिससे मैं भी स्वपरहितकारी विचरण कर सकूं।

[भगवान् महावीर स्वामी की पूजा करते समय वह प्रसंग याद करना चाहिए जब उन्होंने बालरूप में अंगूठे से मेरू को कंपायमान कर अनन्त शक्ति का परिचय दिया था।]

जानु-घुटने

हे भगवन ! आपने लेशमात्र भी थकान का अनुभव न करते हुए खडे पाव स्थित होकर उत्कृष्ट आत्मसाधना की, आत्मध्यान किया। साधना और ध्यान के कारण आपके जानु भी पूज्य बन गए।

हे कृपालो ! आपकी जानुपूजा के प्रभाव से मुझे ऐसा सामर्थ्य मिले कि मैं भी अविचलरूप से और अप्रमत्त भाव मे आत्मध्यान कर सकू।



कांडा-हाथ

हे भगवन ! आपके हस्त की किन शब्दो से प्रशसा करू ? आपके पास पुष्कल ऋद्धि और सिद्धि थी। तदपि परमात्मस्वरूप प्राप्त करने के लिए आपने स्वय अपने हाथों से उसका दान किया। वह भी इस रीति से कि दायें हाथ से दिए गए दान का बायें हाथ को पता न चले।

आपने इसी हाथ से आपकी शरण मे आनेवालों को आपने अभय दान भी दिया। त्याग और अभयदान के कारण आपका हाथ (हथेली) भी पूज्य है।

हे भगवन् ! आपकी करपूजा के प्रभाव से मेरे हृदय मे भी यह भावना प्रगट करो कि मैं भी समस्त भौतिक पदार्थों का त्याग कर सकू, मुझे ऐसा जीवन जीने की क्षमता प्राप्त हो की मेरे परिचय मे आनेवाले सभी निर्भयता का अनुभव करे।



स्कंध-कंधा

हे भगवन्! आपने अपने कन्धों से अभिमान दूर छिटक दिया। जब मनुष्य अभिमान करता है, उसके स्कन्ध ऊंचे हो जाते हैं। भगवन्! आपने अनन्त बलवाले होते हुए भी बड़े से बड़े अत्याचार करनेवाले सामान्य जन के सन्मुख भी गर्व से कंधा ऊंचा नहीं किया।

हे भगवन्! आपने अपने कंधों पर अनेक जीवों के आत्मोद्धार का उत्तरदायित्व उठाया था। वह भी किसी प्रकार के प्रतिकार की अपेक्षा न रखते हुए। आपने जिनकी जिम्मेवारी ली, उन्हें आपने पार लगाया। जिन कंधों ने ऐसा महान् उत्तरदायित्व सफलतापूर्वक निभाया, मैं उनकी पूजा करता हूं।

हे भगवन्! आपकी स्कंध पूजा से मुझे भी ऐसा सामर्थ्य प्राप्त हो कि मेरे भाग में आई हुई कल्याण जवाबदारी मैं किसी आशा अथवा अपेक्षा के बिना सफलतापूर्वक वहन कर सकूं। इसी प्रकार कंधों और हृदय से मेरा गर्व दूर हो जाए।



मस्तक

हे भगवन ! आपको जब भी जहा भी और देखा है, तब, तथा वहा आपको सतत चिंतन करते हुए देखा है। आपने सदैव सब जीवों के आत्मकल्याण का विचार किया है। आत्मचिंतन और आत्मध्यान मे अनवरत लीन आपका मस्तक वस्तुत पूज्य है।

हे भगवन ! आपकी मस्तक पूजा के प्रभाव से मुझे भी ऐसी शक्ति प्राप्त हो कि मैं हर क्षण आत्मचिंतन मे रहू, परहित के विचार मे रहू।



ललाट

हे भगवन् ! आप त्रिकालज्ञानी थे। आप जानते थे कि आपके ललाट पर क्या लिखा है। तथापि आपने अपनी आत्मसाधना लगातार चालू रखी थी। अज्ञानियों ने आपको अनेक कष्ट दिए। ऐसे अवसरो पर आप विचलित नहीं हुए। देवताओं, राजाओ और सपन्नजनो ने आपकी अर्चना की। इससे आप हर्षित नहीं हुए। पूजा और पीडा दोनों प्रसगो में आप समभाव में ही स्थिर रहे। आपके ललाट की रेखाओ और नसों में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ। ऐसे सम और शात ललाट की मै पूजा करता हू।

हे भगवन् ! आपके ललाट की पूजा के प्रभाव से मुझे ऐसी समर्थता प्राप्त हो कि जिससे ललाट-अंकित को मिथ्या करने अथवा ललाट लिखित दुःखों में राहत पाने के लिए मैं दोरे, धागे, मंत्र, तावीज आदि के प्रलोभन में न पड़ूं तथा सतत आत्मसाधना करते हुए दुःख-सुख में समताधारी रह सकूं।



कंठ

हे भगवन् ! आपने आवश्यक प्रसंगों के समय कितना ही उपदेश दिया जितना आवश्यक था। आपने हमारी अनेक शंकाओं का समाधान किया है। हमारे आत्मोद्धार के लिए आपने तत्वों तथा मोक्षमार्ग की मंजुल, दिव्यवाणी का स्त्रोत प्रवाहित किया। आपके कंठ ने तो जादू या चमत्कार किया। आपकी वाणी का श्रवण कर अनेक जीव भवसागर पार कर गये।

हे भगवन् ! आपकी कंठपूजा के प्रभाव से हममें ऐसी शक्ति प्रगट हो कि जिससे हमारी वाणी द्वारा स्वपरहित हो तथा आपके मौन के समान अपने मौन से आत्मनिष्ठ बन सके।



हृदय

हे भगवन् ! मैं आपके हृदय की कल्पना करता हूँ और मेरा रोम-रोम हर्षित हो उठता है। आपका हृदय उपशमित, निःस्पृह, कोमल और करुणामय था। आपके हृदय में हमेशा और निरन्तर प्राणीमात्र के प्रति प्रेम का सागर उमड़ता था। वह मैत्रीभाव से धड़कता रहता था। शरणागत को आप हृदय से लगाते थे।

हे प्रभो ! आपकी हृदय पूजा के प्रभाव से पुनः पुनः यही रट लगाता हूँ कि मेरे हृदय में सदैव निःस्पृहता, प्रेम, करुणा और मैत्रीभाव ही प्रवाहित हो।



नाभी

हे भगवन् ! हमें इस ध्यान की प्रक्रिया सीखनी है। श्वासोच्छ्वास को नाभि में स्थित करके, मन को आत्मा के शुद्ध स्वरूप से सबद्ध कर ध्याता, ध्यान और ध्येय को एकरूप बनाकर आपने उत्कृष्ट समाधि सिद्ध की थी।

हे प्रभो ! आपकी नाभिपूजा के प्रभाव से मुझे ऐसी शक्ति प्रदान करो कि मैं भी अपने प्राण श्वास को नाभि में स्थिर करके आत्मा के सहज स्वरूपभाव समाधि का अनुभव कर सकूं।

वीतराग, निर्विकार हैं। अतः आपका ध्यान करते रहने में राग द्वेषादि कम हो जाते हैं बाद में इनका सर्वथा अंत हो जाता है। इसीलिए संसार से छुटकारा और मोक्ष मिलते हैं। यह सब कुछ आपका ध्यान करने से होता है। फलतः आपके प्रभाव से मोक्ष प्राप्त होता है।

हे प्रभो! आपने संसार को ठीक ही समझा है कि यह संसार दुःखमय है। कारण यह है कि इसमें बात बात में जन्ममरण होता रहता है। उच्च देव जन्म पाकर भी मरना पड़ता है, तुच्छ अशुचि स्थान में जाना पड़ता है, वहां अशुद्ध आहार करना पड़ता है। अन्यच्च संसार में रोग, शोक, दरिद्रता, मारपीट अपमान, दुर्घटना, चिंता, भय, संताप आदि दुःखों का पार नहीं। इसीलिए प्रभो! आपने सकल संसार के त्याग का ही पुरुषार्थ करके अपनी आत्मा को संसार से उबार लिया। अतः आपसे यही याचना करता हूं कि ऐसे दुःखमय, विडम्बनामय और पराधीनता, निन्दा से भरपूर संसार के प्रति मुझे घृणा हो। आप मेरे मन में ग्लानि उद्वेग, अरुचि उत्पन्न कर योग्य पुरुषार्थ द्वारा मुझे मोक्ष दिलवाओ।

हे करुणासिंधो! आपने पूर्व भवों से ही कितनी महान् अद्भुत धर्म साधना कि थी। हे महावीर देव! आपने तो एक लाख वर्ष तक सतत मासखमण के पारणे से मासखमण किया। इसकी तुलना मे मैं क्या कर सकता हूं? खानपान का संसार मुझे कहां खटकता है? मुझे खानपान खोटा कहां प्रतीत होता है? प्रभो! इस कुटिल आहार संज्ञा से मेरी रक्षा करो। मैं आपका ऐसा ध्यान करूं कि मुझे पापी आहार संज्ञा से घृणा हो जाए।

हे त्रिभुवननाथ! आपके जन्म धारण करनेपर स्वर्ग की बड़ी साम्राज्ञी दिक्कुमारियों ने आपको स्नान कराया, लाड़ प्यार किया, रास गीत गाया, ६४ इन्द्रोंने मेरू शिखर पर आपका जन्ममहोत्सव मनाया। तदपि आपने लेशमात्र अभिमान नहीं किया। इसमें आपने न तो कोई

आत्मपुरुषार्थ देखा, न आत्मसिद्धि। हा पुण्यकर्म की लीला देखी। दूसरे की लीला मे अभिमान कैसा? मुझे तो राख और धूल जैसा जन्म मिला है, तो भी मैं अभिमान से चूर हूं।

हे जगन्नाथ! आपको जन्म से ही राजकीय सुख प्राप्त हुए, राजवैभव मिला। तो भी आप उससे लिप्त नहीं हुए, हर्षित नही हुए, क्योंकि आपने इसमे आत्महित नहीं देखा। इसके मुकाबिले मे मुझे क्या मिला? ठीकरें। इनकी प्राप्ति मे कुछ भी सार या लाभ नहीं। तो भी मेरी आसक्ति का पार नही। प्रभो? मेरा क्या होगा? मुझे ऐसा बल दो कि मैं इस ससार के वैभव और सुखभोगो को तुच्छ समझू, भयानक जान इनपर मुझे किंचित् मान न हो, राग न हो। आप मुझे कोहिनूर हीरे के समान मिले हो। उसी प्रकार का मुझे आपका धर्म मिला। उसकी तुलना में यह सुख सपत्ति काचके टुकड़े जैसी है। मैं इसमे काममोह क्यो करू? यदि मैं आपकी अपेक्षा इसे मूल्यवान् समझू तो इसका अर्थ यह होगा कि मैं आपको पहचान ही नहीं पाया।

हे जिनेश्वर भगवन्! आपने चारित्र ग्रहण कर कितना महान् तप किया! कैसे परिषद् और उपसग सहे! दिन रात खडे रहकर कैसे ध्यान किया! इसमें रत्ती भर भी कोमलता नही रखी। अतिकोमल शरीर मे बडी भारी सहनशीलता धारण की। इसके समक्ष मेरी साधना में क्या रखा है? नाथ! मुझे सहिष्णु बनाकर ऐसी साधना की शक्ति दो।

हे जगदीश! आपके सदृश नवतत्वो का उपदेश और किसने दिया? अवलोगत्वा पृथ्वीकाय, अपकाय, और निगोदतक भी जीव होते हैं, इस तथ्य को बतानेवाले आप ही थे। इनकी रक्षा करने तक का अहिंसा धर्म भी आपने ही बताया। सूक्ष्मजीवों को अभयदान देने तक का सच्चा साधु जीवन आपके मार्ग में ही उपलब्ध है। तापस बनकर वन मे निवास तो किया। परतु वहा जल, वनस्पति आदि के जीवों की हिंसा की छूट! वहा

सर्वथा अहिंसामय चारित्र कहां ? वस्तुतः पूर्ण अहिंसा का जीवन यदि कहीं है तो वह जैन चारित्र जीवन में ही है। वह मानवभव में ही संभव है। यह उपदेश देकर आपने हमें मानवभव का सच्चा कर्त्तव्य बताया।

हे जगदाधार ! इसी प्रकार आस्रव-संवर का विवेक भी आपके शासन में दृष्टिगोचर होता है। 'अविरति कर्मबंधन का कारण है' यह बात आपके अतिरिक्त किसने कही ? 'पाप न करने पर भी उसके त्याग की प्रतिज्ञा के अभाव में, अविरति के अभाव में कर्मबंधन होता है' यह सूझ भी आपकी ही थी। समिति, गुप्ति का उपदेश भी आपके धर्म में है प्रायश्चित्त का विशद वर्णन, कर्मसिद्धांत, कर्म की १५८ प्रकृति, उसकी स्थिति, इस प्रदेश, बंध, उदय, उदीरणा संक्रमण, अपवर्तना, निकाचना १४ गुणस्थान, अनेकांतवाद आदि पर आपने विस्तृत विचार बताए। ये सब जैन-धर्म की विशेषताएँ हैं। इस प्रकाश के बिना कल्याण कैसे हो ?

हे अरिहंतदेव ! अज्ञानान्धकार में भटकनेवाले हम लोगों को अपने जीवन का आलंबन देकर आपने भव्य उपकार किया है। इससे हम दोनों को आराधना का बल मिला है। आपके आलंबन में मन पवित्र तथा उच्च साधना से परिपूर्ण रहता है। हे प्रभो ! आपने जीव अजीव आदि तत्वों का, सिद्धांतों का, मोक्षमार्ग का सत्यप्रकाश प्रदानकर हमपर असीम उपकार किया है। आप यथार्थ धर्मचक्रवर्ती हो। आपकी सेवा के प्रभाव से हमें यह प्रकाश प्राप्त हो, मोक्ष-मार्ग की उच्चसाधना मिले, हमारी काम, क्रोधादि की वासनाएँ नष्ट हों, आहारादि पाप संज्ञाएँ दूर हों, रागद्वेष कटता जाए, जड़पदार्थ-यहां तक कि देह पर भी हमें आसक्ति न रहे। हम मात्र अपनी आत्मा में ही लीन रहें, ज्ञान, दर्शन, चारित्र में ही तन्मय हों, यही हमारी प्रार्थना है।



चैत्यवंदन

(१)

श्री शत्रुंजय के चैत्यवंदन

श्री शत्रुंजय सिद्धक्षेत्र, दीठे दुर्गति वारे,
भावधरीने जे चढे, तेने भव पार उतारे ॥१॥
अनंत सिद्धनु एह ठाम, सकलतीर्थ नोराय
पूर्व नवाणु ऋषभदेव, ज्या ठविया[1] प्रभु पाय ॥२॥
सूरजकुंड मोहामणो, कवड जक्ष अभिराम,
नाभिराया कुल मंडनो, जिनवर करू प्रणाम ॥३॥

(२)

श्री सीमंधरस्वामी का चैत्यवंदन

श्री सीमंधर जगधणी [1] आ भरते आवो,
करुणावंत करुणा करी, अमने[2] वंदावो
सकल भक्त तुमे धणी, जो होवे अम[3] नाथ,
भवोभव हु छु ताहरो,[4] नहीं मेलु हवे साथ ॥१॥
सयलसंग छंडी[5] करी, चारित्र लइशु,
पाय तुमारा सेवीने, शिवरमणी वरशु
ए अलजो[6] मुजने घणो, पूरो सीमंधर देव,
इहाथकी हु विनवु, अवधारो मुज सेव ॥२॥

१ पधारे, पदार्पण किया २. हमें ३ हमारे ४ तुम्हारा ५ छोड़ ६ विनती

श्री पार्श्व प्रभु चैत्यवंदन

जयचिंतामणि पार्श्वनाथ, जयत्रिभुवन स्वामी,
अष्ट कर्म रिपु जीतीने पंचमी गति पामी....१

प्रभु नामे आनंदकंद, सुखसंपत्ति लहीए,
प्रभु नामे भव भय तणां[1] पातक सब दहीए....२

ॐ ह्रीं वर्ण जोडी करीए, जपीए पारस नाम,
विष अमृत थइ परिणमे, पावे अविचल ठाम....३

(४)

तुज मूरति ने[2] नीरखवा, मुज नयणां तरसे,
तुम गुणगणने बोलवा, रसना मुज हरखे....१

काया अति आनंद मुज, तुम पद युग फरसे,
तो सेवक तार्यां विना, कहो किम हवे सरसे?....२

एम जाणीने साहीवाए, नेक[3] नजर मोहे जोय,
ज्ञानविमल प्रभु नजर थी,[4] ते शुं[5] जेह नवि होय..३

(५)

पद्मप्रभ ने वासुपूज्य, दोय राता[6] कहीए,
चंद्रप्रभ ने सुविध नाथ, दो उज्ज्वल लहीए....१

मल्लिनाथ ने पार्श्वनाथ, दो नीला नीरख्या,
मुनिसुव्रत ने नेमनाथ, दो अंजन सरिखा....२

सोले जिन कंचन समा ए, एवा जिन चोवीश,
धीर विमल पंडित तणो, ज्ञानविमल कहे शिष्य...३

---

१. का, २. को, ३. कुछ, ४. से, ५. क्या, ६. लाल रंग का

❀ स्तवन विभाग ❀

जिन तेरे चरण की शरण ग्रहू, हृदयकमल में ध्यान धरत हूं,

शिर तुज आण वहु १ जिन

तुम सम खोज्यो देव खलक[1] में, पेख्यो नहीं कबहु . २ जिन

तेरे गुण की जपु जयमाला, अहनिश[2] पाप दहु ३ जिन

मेरे मन की तुम सब जानो, क्या मुख बहोत कहु ५ जिन

कहे जसविजय करो त्यु साहिब, ज्यु भव दुःख न लहु ५ जिन

(२)

क्यु कर भक्ति करू प्रभु तेरी ?

क्रोध, लोभ, मद, मान, विषयरस छाडत गेल[3] न मेरी।

कर्म नचावे तिमहि नाचत माया वश नटचेरी, क्यु

दृष्टिराग दृढ बधन बाध्यो, निकसन न रही शेरी,[4] क्यु

करत प्रशंसा सब मिल अपनी परनिंदा अधिकेरी, क्यु

कहत मान जिन भाव भक्ति बिन शिवगति होत न मेरी, क्यु

(३)

लाग्या नेह जिम चरणे हमारा, जिम चकोर चित्त चन्द पियारा,

सुनत कुरग[5] नाद मन लाइ, प्राण तजे पर प्रेम निभाइ,

घन तज पाणी न आवत जाइ, ए सग चातक केरी बडाइ, ।१। लाग्या नेह

जलत नि शंक दीपके मांही, परि पतग दु होत क नाहीं ?

पीडा होत तदपि नहि जाही, शंका प्रीतिवश आवत नाहीं।२। लाग्या नेह

१, पृथ्वी, जगत् २ दिनरात ३ पीछा ४ गली ५ हिरण

मीन मगन नहीं जलथी न्यारा, मानसरोवर हंस आधारा,
चोर नीरखनिशि अति अंधियारा, केकी मगन सुन घन गरजारा–
लाग्या नेह...॥३॥

प्रणव ध्यान जिम जोगी आराधे, रसरीति रम साधक माधे,
अधिक सुगंध केतकी में लाधे, मधुकर तस संकट नाहि बाधे,
लाग्या नेह...॥४॥

जाका चित्त जिहां थिरता माने ताका मरम तो तेहि ज जाने,
जिनभक्ति हिरदे में ठाने, चिदानंद मन आनंद माने,
लाग्या नेह...॥५॥

(४)

आनंद की घड़ी आई सखीरी आज आनंद की घड़ी आई,
करके कृपा प्रभु दरिसण दीनो, भव की पीड मिटाई,
मोह निद्रा से जागरित करके सत्य की सान सुनाई,
तन मन हर्ष न माई...सखीरी आज...॥१॥
नित्यानित्यका तोड बता कर, मिथ्या दृष्टि हराई,
सम्यग्ज्ञान की दिव्य प्रभा को अंतर में प्रगटाई,
साध्य–साधन दिखलाई...सखीरी आज...॥२॥
त्यागवैराग्य संयम के योग से निस्पृह भाव जगाई,
सर्व संग परित्याग करा कर, अलख धून मचाई,
अपगत दुःख कहलाई...सखीरी आज...॥३॥
अपूर्वकरण गुणस्थानक सुखकर, श्रेणी क्षपक मंडवाई,
वेद तीनों का छेद करा कर, क्षीण मोही बनवाई,
जीवन–मुक्ति दिलाई...सखीरी आज...॥४॥
भक्तवत्सल प्रभु! करुणासागर, चरणशरण सुखदाई,
जस कहे ध्यान प्रभु का ध्यावत, अजर अमर पदपाई,
द्वन्द्व सकल मिट जाई...सखीरी ॥५॥

(५)

काम सुभट गयो हारी रे थाशु[1] काम सुभट गयो हारी,
रति[2] पति आग वसे सहु सुरनर, हरि हर ब्रह्मा मुरारि रे थाशु
गोपीनाथ विगोपित कीनो, हर अर्धांङ्गितनारी रे थाशु
तेह[3] अनग[4] कियो चकचूरा, ए अतिशय तुज भारी रे थाशु
तेह साचु जिम नीर प्रभावे, अग्नि होवत सवी छारी रे थाशु
पण वडवानल प्रबल जब प्रगटे, तब पीवत सवी वारी रे थाशु
एणी परे तें अति दहवट कीनो विषय आरति रति वारी रे थाशु
नयविमल प्रभु तुहि नीरागी, महामोटो ब्रह्मचारी रे थाशु

(६)

आवो मुज मन धाम, प्रभुजी आवो
सम अमारा तुमे न मानो हाथ न झाल्यो दाम
नेह नजर शु कोइ न निहालो, वीतराग तुज नाम प्रभुजी
कोइ हरिहर बभन माने, कोइने मन राम,
हु सरागी वीतरागनो रे, मोहियो गुण ग्राम प्रभुजी
तुही तुही तुही तुही जाप जपता आम,
कइ शुभरागे भव तर्या एम, केता कहु स्वाम प्रभुजी
त्हे सरागी शुभ भावशु वीतरागता परिणाम,
तेह ने द्यो खोट जस शिर, तु ही आतमराम प्रभुजी

---

१ आपसे, २ कामदेव, ३ वह, ४ कामदेव

पुष्प कलावती विजय वसो कांइ नयरी पुंडरीकीणि नार
सत्यकी नंदन वंदना अवधारो गुणना धाम । ॥८॥
श्रेयांस नृपकुल चन्दलो कांइ रुक्मिणी राणीनो कंत
वाचक रामविजय कहे तुम ध्याने मुज मन चित्त । ॥९॥

श्रीसिद्धगिरि जी के स्तवन

(राग दुर्गा)

क्युं न भये हम मोर...विमलगिरि क्युं न भये हम मोर...१
सिद्धवड रायण रुख की शाखा, झुलत करत झकोर, विमलगिरि...२
आवत संघ रचावत अंगियां, गावत गुण घमघोर, विमलगिरि...३
हम भी छत्रकला करी निरखत, कटने कर्म कठोर, विमलगिरि...४
मूरत देख सदा मन हरखे, जैसे चंद चकोर, विमलगिरि...५
श्री रिसहेसर दास तिहारो, अरज करत करजोर, विमलगिरी...६

(२)

मोरा आतमराम ! कुण दिन शत्रुंजे जाशुं...
शेत्रुंजा केरी[1] पाजे,[2] चढतां ऋषभ तणां गुण गाशुं, मोरा...१
गिरिवरनो महिमा सुणीने, हियडे समकित वास्युं,
जिनवर भावसहित पूजीने, भवे भवे निर्मल थाशुं...मोरा...२.
मनवच काया निर्मल करीने, सूरजकुन्डे न्हाशुं,
मरुदेवीनो नंदन नीरखी, पातक दूरे पलाइयुं[3]...मोरा...३.

---

१. की २. सीढी, पगथी, ३. भाग गया

इण गिरि सिद्ध अनता हुआ, ध्यान मदा तस ध्यासु,
मकल जनममा ए मानव भव, लेखे करीये सराशु मोरा ४
सुरवर पूजित पदकज रज मिलवट तिलके चढाशु,
मनमा हर्षी डुग'र फरमी, हैडे हरखित थाशु मोरा ५
समकित धारी स्वामी साथे, सद्‌गुरु समकित लासु,
छ 'री' [2]पाली पाप पखाली, दुर्गति दूरे पलास्यु मोरा ६
श्री जिननामी समकित पामी लेखे त्यारे गणाश्यु,
ज्ञानविमल कहे धन धन ते दिन, परमानद पद पाशु मोरा ७

(३)

शेत्रुजा गढना वासी रे, मुजरो मानजो रे,
सेवकनी सुणी वातो रे, दिलमा धारजोरे
प्रभु मे दीठो तुम देदार, आज मुने उपन्यो हरख अपार,
साहिबानी सेवा रे, भवदु ख भाजशे रे शेत्रुजा १
एक अरज अमारी रे, दिलमा धारजो रे,
चोरामी लाख फेरा रे, दूर निवारजो रे,
प्रभु ! मने दुर्गति पडतो राख, तोर दरशन वहेलु[3] रे दाख साहिबानी २
दौलत सवाइ रे, मोरठ देशनी रे,
बलिहारी जाऊ रे, प्रभु तारी देशनी रे,
प्रभु मे दीठु रूडु[4] तार रुप,
मोह्या सुरनर वृद ने भूप साहिबानी ३
तीरथ को नहीं रे शेत्रुजा सारखु रे,
प्रवचन पेखीने कीधु में तो पारखु रे -

१ छोटा पर्वत २ तीर्थयात्री, पादविहारी, ब्रह्मचारी, भूमि मथारी, एक-ए विहारी, सचित्त-परिहारी, षडावश्यककारी होता है। ३ शीघ्र ४ उत्तम

ऋषभ ने जोइ जोड हरखे जेह,
त्रिभुवन लीला पामे तेह...साहिबानी...४

भवो भव मांगु रे प्रभु तागी सेवना रे,
भावठ न भांगे रे जगमां जे विना रे,
प्रभु मारा पूरजो मनना कोड
एम कहे उदयरतन कर जोड...साहिबानी...५



श्री ऋषभ जिन के स्तवन

(१)

बालुडो निस्नेही थइ गयो रे, छोडयुं विनीतानुं राज,
संयम रमणी आराधवा, लेवा मुक्तिनुं राज...
मेरे दिल वसी गयो वालमो, मेरे मन वसी गयो वालमो १

माताने मेल्या एकला रे, जाय दिन नवि रात,
रत्नसिंहासन वेसवा, चाले अणवाणे [1]पाय। मेरे...२

व्हाला[2] नुं नाम नवि वीसरे रे, झरे आंसुडानी धार,
आंखलडीए छाया वली, गया हर्ष हजार.. मेरे...३

केवलरत्न आपी करी रे, पूरी मातानी आश,
समवसरण लीला जोइने साध्या आतम काज...मेरे...४

भक्तवत्सल भगवंतने रे, नम्ये निर्मल काय,
आदि जिणंद आराधतां, महिमा शिव सुख थाय। मेरे...५

१. नंगेपांव २. प्रियतम

(२)

प्रथम जिनेश्वर प्रणमीए, जास सुगधि रे काय,
कल्पवृक्ष परे[1] ताम इन्द्राणी, नयन जे भृगपरे लपटाय ॥१॥ प्रथम

रोग उरग तुज नवि नडे,[2] अमृत जेह आस्वाद,
तेहथी प्रतिहत[3] तेह मानु कोइ नवि करे, जगमा तुमशु रे वाद ॥२॥ प्रथम

वगर धोइ तुज निरमली, काया कचन वान,
नहीं प्रस्वेद लगार[4], तारे तु तेहने, जे धरे ताहरू ध्यान ॥३॥ प्रथम

राग गयो तुज मनथकी, तेहमा चित्र न कोइ,
रुधिर आमिषथी राग गयो तुज जन्मथी दूध सहोदर होय ॥४॥ प्रथम

श्वासोच्छवास कमल समो, तुज लोकोत्तर वाद,
देखे न आहार विहार चर्म चक्षु धणी एहवा तुज अवदात[1] ॥५॥ प्रथम

चार अतिसय मूलथी, ओगणीस देवना कीध,
कर्म खप्याथी अगियार, चोत्रीस एम अतिशया,
समवायागे प्रसिद्ध ॥६॥ प्रथम

जिन उत्तम गुण गावता, गुण आवे निज अंग,
पद्मविजय कहे एह समय प्रभु पालजो जिम थाऊ अभग ॥७॥ प्रथम



१ समान २ पीडित करना है ३ पराजित ४ तनिक

अभिनन्दन जिन स्तवन

अभिनंदन स्वामी हमारा, प्रभु भवदुःख भंजनहारा,
यह दुनिया दुःख की धारा, प्रभु इनसे करो निस्तारा १ अभि....

हुं कुमति कुटिल भरमायो, दुर्नीति करी दुःख पायो,
अब शरण लियो है थारो, मुजे भवजल पार उतारो । २ अभि...

प्रभु शीख हैये नवि धारी, दुर्गतिमां दुःख लियो भारी,
इन कर्मों की गति न्यारी, करे बेर बेर खुवारी[1] । ३ अभि...

तुमे करुणावंत कहावो, जगतारक बिरुद धरावो,
मेरी अरजीनो एक दावो, इन दुःख से क्युं न छुडाओ । ४ अभि...

में विरथा जनम गवायो, नहीं तन धन स्नेह निवार्यो,
अब पारस परसंग पामी, नहीं वीरविजय कुं खामी । ५ अभि...



१. उत्तमता २. बरबादी, नाश

श्री पद्म प्रभु जिनस्तवन

पद्मप्रभु प्राण से प्यारा, छोडावो कर्म की धारा,
करम फंद तोडवा घोरी[1], प्रभुजी से है अर्ज मोरी। १ पद्म

लघुवय एक थें जीया, मुक्तिमें वास तुम कीया,
न जानी पीर थें मोरी, प्रभु अब खींच ले दोरी। २ पद्म

विषय सुख मानी मो मन में, गयो सब काल गफलत में,
नरक दुख वेदना भारी, नीकलवा न रही बारी। ३ पद्म

परवश दीनता कीनी, पाप की पोट सिर लीनी,
भक्ति नहीं जानी तुम केरी, रह्यो निशदिन दुख घेरी। ४ पद्म

इणविध विनती तोरी कर मे दोय कर जोरी,
आतम आनंद मुज दीजो, वीर नु काज सब कीजो। ५ पद्म



---

१ घरा

श्री शांतिनाथ जिन स्तवन

हम मगन भये प्रभु ध्यान में,
विसर गई दुविधा तन मन की, अचिरासुत गुणगान में, हम...
हरि हर ब्रह्म पुरंदर की रिद्धि, आवत नहीं कोउ मान में,
चिदानंद की मौज मची है, समता रसके पान में। १ हम...
इतने दिन तुम नाहि पिछान्यो, जनम गयो सब अजान में,
अब तो अधिकारी होइ बैठे, प्रभु गुण अखय खजान में। २ हम...
गई दीनता अब सबही हमारी, प्रभु तुज समकित दान में,
प्रभु गुण अनुभव रसके आगे, आवत नहीं मान में। ३ हम...
जिनही पाया तिन ही छिपाया, न कहे कोउ के कान में,
ताली लागी जब अनुभव की, तब समझे एक सान[1] में। ४ हम...
प्रभु गुण अनुभव चंद्रहास[2] ज्युं सोतो न रहे म्यान में,
वाचक जश कहे मोह महा अरि जित लियो मैदान में। ५ हम...

(२)

शांति जिनेश्वर साचो साहिब, शांतिकरण इन कलि में हो जिनकी...
तुं मेरामनमें तुं मेरा दिल में, ध्यान धरूं पलपल में साहिबजी तुं मेरा..१
भवमां भमता में दरिशन पायो, आशा पूरो एक पलमें हो जिनजी
तुं मेरा...२
निरमल ज्योत वदन पर सोहे निकस्यो ज्युं चंदवादल में, हो जिनजी...३
मेरो मन तुम साथे लीनो, मीन वसे ज्यु जल में हो जिन जी...४
जिनरंग कहे प्रभु शांति जिनेश्वर, दीठो जी देव सकल में हो जिनजी...५

---

१. संकेत २. तलवार

श्री नेमनाथ प्रभु का स्तवन

देखो भाई अजब रूप जिनजी को
उनके आगें और सबहु को
रूप लागे मोहे फीको। देखो

लोचन करूणा अमृत कचोले[1]
मुख सोहे अति नीको[2]
कवि जस विजय कहे यो साहिब
नेमजी त्रिभुवन टीको। देखो



श्री पार्श्वनाथ प्रभु के स्तवन

(१)

समय समय सो वार संभारू, तुजशु लगनी जोर रे,
मोहन मुजरो मानी लीजे, ज्युं जलधर प्रीति मोर रे ॥१॥

माहरे तनधन जीवन तुं ही एहमा झूठ न मानो रे,
अंतरजामी जगजन नेता, तुं कीहा नथी छानो रे ॥२॥

जेने तुजने हियडे नवि धार्यो, तास जनम कुण लेखे रे,
काचे राचे ते नर मूरख, रतनने दूर उवेखे रे ॥३॥

१ कटोरा २ प्यारा

सुरतरु छाया मूकी गहरी, बाउल तले कुण बेसे रे,
तोहरी ओलग लागे मीठी, किम छोडाय विशेषे रे ॥४॥

वामा नंदन पास प्रभु जी, अरजी चित्तमां आणोरे,
रूप विबुधनो मोहन पभणे, निजसेवक करी जाणो रे ॥५॥

(२)

प्रभु पास चितामणि मेरो, हां रे प्रभु,
मिल गयो हीरो ने मिट गयो घेरो,
नाम जपुं नित तेरो रे...॥१॥ प्रभु.

प्रीत लगी मेरी प्रभु से प्यारी
जेशो चंद चकोरो रे ॥२॥ प्रभु....

आनंदघन प्रभु चरण शरण है
मुज दीयो मुक्ति को डेरो रे–प्रभु. ॥३॥

(३)

कोमल टहुकी रही मधुवन में, पार्श्व शामलिया वसो मेरे दिल में,
काशीदेश वाराणसी नगरी, जन्म लियो प्रभु क्षत्रिय कुल में...पार्श्व..१
बालपणा थी अद्भुत ज्ञानी, कमठ को मान हर्यो एक पल में..पार्श्व..२
नाग निकाला काष्ठ चिराकर, नागकुं सुरपति कियो एक छिन में.पार्श्व.३
संयम लई प्रभु विचरवा लाग्या, संयमे भींज गयो एक रंग में.पार्श्व..४
समेतशिखर प्रभु मोक्ष सिधाव्या, पार्श्वजी की महिमा तीन भुवन में.प..५
उदयरतन की एहा अरज है, दिल अटको तोरा चरणकमल में...पार्श्व...६

(४)

तु प्रभु माहरो हु प्रभु ताहरो, क्षण एक मुजने नाही विसारो,
महेर करी मुझ विनति स्वीकारो, स्वामी सेवक सामु नीहारो ॥१॥
लाख चौरासी भटकी प्रभुजी, आव्यो हु तारे शरणे हो जिनजी
दुरगति कापो शिवसुख आपो, भक्त सेवक ने जिन पद स्थापो ॥२॥
अक्षय खजानो प्रभु तारो भर्यो छे, आप कृपालु में हाथ धर्यो छे,
वामानदन जगवदन वह्यालो[1] दयाकरी मुज ने लेह नीहालो ॥३॥
पल पल समरु नाथ शखेश्वर, समरथ तारण तु ही जिनेश्वर,
प्राण थकी तु मुजने अधीको प्यारो, देव अनेरामा तुही ज न्यारो ॥४॥
भक्तवत्सल तुज बिरुद सुणी केड[2] न छोडु एम लेजो जाणी
चरणोनी सेवा हु नित्य नित्य चाहु, घडी घडी हु मन माही उमाहु[3] ॥५॥
ज्ञान विमल तुज भक्ति प्रभावे, भवो भवना सताप शमावे
अमिय भरेली तारी मूर्त्ति नीहाली, पाप अतरना देजो पखाली ॥६॥

---

१ प्रिय २ पल्ला ३ प्रसन्न होऊ

श्री महावीर प्रभु के स्तवन

(१)

वीर वीरनी धून जगावो, प्रभु वीरनां दरशन पावो
प्रभु वीर ने शिर झुकावो, वीर वीरनी धून जगावो ॥१॥

भवसागरमां वीर सुकानी[1], नैया पार तरावो,
पापनी भेखड़[2] दूर हटावो, शिव मंदिर वतलावो॥२॥

देह सदनमां आत्मा जगाडी, ज्ञान ज्योति प्रगटावो,
भाव भरेला अमीरस सिंची, आ भव पार उतारो ॥३॥

रूडी ने रढियाली[3] रे वीर तारी देशना रे

ए तो भली योजनमां संभलाय, समकित बीज आरोपण थाय। रूडी. १.

षट् महिनानी रे भूख तरस शमे रे, साकर द्राक्ष ते हारी जाय,
कुमति जनना मद मोडाय...रूडी। २.

चारनिक्षेपे रे सात नये करी, रे सांहे भली सप्तभंगी विख्यात्,
निज निज भाषाए समजाय...रूडी। ३.

प्रभुजीने ध्यातां रे शिवपदवी लहेरे, आतम ऋद्धिनो भोक्ता थाय,
ज्ञानमां लोकालोक समाय...रूडी. ४.

प्रभु जी सरिखा रे देशक को नहि रे, एम सहु जिन,
उत्तम गुणगाय, प्रभु पद पद्मने नित्य नित्य ध्यान...रूडी. ५.

---

१. पतवार २. कगार ३. अतिसुंदर

(३)

जगपति तु तो देवाधिदेव ! दास नो दास छु ताहरो,
जगपति तारक तु किरतार, मन मोहन प्रभु माहरो ॥१॥
जगपति ताहरे भक्त अनेक, माहरे एकज तु धणी,
जगपति वीरमा तु महावीर, मूरति ताहरी मोहामणी ॥२॥
जगपति त्रिशलाराणी नो तु नद,[1] गधार बदरे[2] गाजियो,
जगपति सिद्धारथ कुल श्रृगार, राजराजेश्वर राजियो ॥३॥
जगपति भक्तोनी भागे तु भीड,[3] पीड पराइ प्रभु पारखे,
जगपति तु प्रभु अगम अपार, समज्यो न जाये मुज सारिखे ॥४॥
जगपति खभायत जंबुसर सघ, भगवत चोवीसमो भेटियो,[4]
जगपति उन्य नमे कर जोड मत्तर नेवु समे कियो ॥५॥

प्रभु विण वाणी कोण सुनावे ?

(४)

नव ए वीर गये शिवमदिर, अब मेरा सशय कोण मिटावे	प्रभु
पहे गौतम गणहर तमहर ए, जिनवर दिनकर जावेरे जाये	प्रभु
कुमति उलूक कुतीर्थि कुनारा, तिगतिगार[5] तम थावेरे थाये	प्रभु
तुम विण चौविह सघ कमल वन, विकसित कोण करावे	प्रभु
मोकु साथ लेइ क्यु न चले, चित्त अपराध धरावे धरावे	प्रभु
यू परभाव विचारी अपनो, भाव समभाव लाव रे लावे	प्रभु
धीर धीर ल्वता[6] की अक्षरे, अंतर तिमिर हटावे हटावे	प्रभु
इन्द्रभूति अनुभव अनुभूति, ज्ञानविमल गुण पावे रे पावे	प्रभु
मवल सुरासुर हरखित होवत, जुहार करण कु आवे	प्रभु

१ तनय, पुत्र २ गधार के तटपर ३ कष्ट ४ १७९० मे बनाया
५ जुगनु के समान समान चमक ६ बोलते बोलते

(५)

माता त्रिशालानंद कुमार, जगतनो दीवो रे,
मारा प्राण तणो आधारा, वीर घणुं जीवो रे,

आमलकी क्रीडाए रमतां, हार्यो सुर प्रभु पामी रे,
सुणजो ने स्वामी आतमरामी वात कहुं शिर पामीरे। वीर घणुं...१।

सुधर्मा सुरलोके रहेतां, अमो[1] मिथ्यात्व भराणां रे,
नागदेवनी पूजा करतां, शिर न धरी प्रभु आणा रे ॥२॥

एक दिन इन्द्र सभामां बेठा, सोहमपति एम बोले रे.
धीरज बल त्रिभुवन नुं नावे, त्रिशला बालक तोले रे ॥३॥

साचुं साचुं सहु सुर बोल्या, पण में वात न मानी रे,
फणीधर ने लघु बालकरूपे, रमत रमियो छानी रे ॥४॥

वर्धमान तुम धैरज मोटुं, बालपणामां नहीं काचुं रे,
गिरुआना[2] गुण गिरुआ गावे हवे में जाण्युं साचुं रे ॥५॥

एक ज मुष्टि प्रहारे म्हारुं, मिथ्यात्व भाग्युं जाय रे,
केवल प्रगटे मोहराय ने, रहेवानुं नहि थाय रे ॥६॥

आज थकी[3] तुं साहिब मारो, हुं छुं सेवक तारो रे,
क्षणएक स्वामी गुण न विसारुं, प्राणथकी तुं प्यारो रे ॥७॥

मोह हरावे समकितपावे, ते सुर स्वर्ग सिधावे रे,
महावीर प्रभु नाम धरावे, इन्द्र सभा गुण गावे रे ॥८॥

प्रभु मलपता[4] निज घेर आवे, सरिखा मित्र सोहावेरे,
शुभवीरनुं मुखडुं जोतां, माताजी सुख पावे रे ॥९॥

---

१. हम २. महापुरुषों के ३. से ४. प्रसन्न होकर

(६)

दीन दुखियानो तुं छे बेली तु छे तारण हार, तारा महिमानो नहिपार
राजपाट ने वैभव छोडी दीधो ससार तारा १

चरणे चडकोशियो डसियो, दूधनी धारा पगथी नीकले,
विषने बदले दूध जोइ ने, चडकोशियो आव्यो शरणे,
चडकोशियोने तें तारी, कीधो घणो उपकार तारा २

कानमा खीला ठोक्या ज्यारे, थइ वेदना प्रभुने भारे,
तोये प्रभुजी शाति विचारे, गो वालनो नहि वाक लगारे,
क्षमा आपनी ते जीवो ने, तारी दीधो ससार तारा ३

महावीर ! महावीर ! गौतम पुकारे, आखथी आसुनी धार वहावे,
क्या गया एकला मूकी मुजने, हवे नथी जगमा कोइ मारे,
पश्चात्ताप करता करता उपज्यो केवल ज्ञान तारा ४

ज्ञान विमल गुरुवयणे आजे, गुण तमारा गावे हरखे,
थइ सुकानी[1] तु प्रभु आवे, नैया भवजल पार तरावे,
अरज स्वीकारी दिलमा धारो, वदन वार वार तारा ५

---

१ नाविक

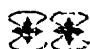
प्रेमनुं अमृत पावुं छे

प्रेमनुं अमृत पावुं छे, प्रभु तारुं गीत मारे गावुं छे
थाय जीवनमां तडका छाया, मागुं तारी एक ज माया.
भक्तिना रसमां नहावुं छे, प्रभु तारु गीत मारे गावुं छे ॥१॥

भवसागरमां नाव झुकावी, त्यां तो अचानक आंधी चडी आवी,
सामे किनारे मारे जावुं छे, प्रभु तारुं गीत मारे गावुं छे ॥२॥

तुं वीतरागी हुं अनुरागी, तारा जीवननी रड मने लागी,
प्रभु तारा जेवुं मारे थावुं छे, प्रभु तारुं गीत मारे गावुं छे ॥३॥

प्रेमना अमृत पावुं छे,
भक्तिना रसमां नहावुं छे,
सामे किनारे मारे जावुं छे,
प्रभु तारा जेवुं मारे थावुं छे,
प्रभु तारुं गीत मारे गावुं छे।



स्तुतियां (थोय)

श्री आदि जिन स्तुति

(१)

आदि जिनवर राया, जास सोवन्न काया,
मरुदेवी माया, धोरी[1] लछन पाया,
जगत स्थिति निपाया, शुद्ध चारित्र पाया,
केवलसिरि राया, मोक्ष नगरे सिधाया ॥१॥

सवि जिन सुखकारी, मोह मिथ्या निवारी,
दुर्गति दुःख भारी, शोक संताप वारी,
श्रेणी क्षपक सुधारी, केवलानन्त धारी,
नमिये नर नारी, जेह विश्वोपकारी ॥२॥

समवसरणे बेठा, लागे छे जिनजी मिठा,
करे गणप पइट्ठा[2] इन्द्र चन्द्रादि दिठा
द्वादशांगी वरिट्ठा,[3] गुंथता टाले रिट्ठा,[4]
भविजन होय हिट्ठा, देखी पुण्ये गरिट्ठा[5] ॥३॥

सुर समकितवंता, जेह रिद्धे महंता,
जेह सज्जन संता, टालिये मुज चिंता,
जिनवर सेवंता, विघ्न वारे दुरंता,
जिन उत्तम थुणता, पद्म ने सुखदिंता ॥४॥

---

१ बैल, वृषभ २ प्रतिष्ठा ३ वरिष्ठ ४ अमंगल ५ महत्ता

(२)

प्रह उठी वंदुं ऋषभदेव गुणवंत,
प्रभु बेठा सोहे समवसरण भगवंत,
गण छत्र विराजे चामर ढाले इन्द्र,
जिनना गुणगावे सुरनर नारीनां वृन्द ॥१॥

श्री महावीर प्रभु की स्तुति

जयजय भवि हितकर वीर जिनेश्वर देव,
सुरनरना नायक जेहनी सारे सेव,
करुणा रस कंदो आणंद आणी,
त्रिशला सुत सुंदर गुणमणि केरो खाणी ॥१॥

श्री सिद्धचक्रजी की स्तुति

प्रह उठी वंदु सिद्धचक्र सदाय,
जपीए नवपदनो जाप सदा सुखदाय,
विधिपूर्वक ए तप जे करे थइ उजमाल,
ते लवि सुख पामे जेम मयणा श्री पाल ॥१॥

श्री सिद्धाचल महातीर्थ की स्तुति

श्री शत्रुंजय तीरथ सार, गिरिवरमां जेम मेरु उदार, ठाकर राम अपार
मंत्र मांहे नवकार ज जाणुं, तारामां जेम चंद्र वखाणुं,
जलनिधि जलमां जाणुं,

पंखी मांहे जेम उत्तम हंस, कुल मांहे जेम ऋषभनो वंश,
नाभि तणो ए अंश

क्षमावंतमां श्री अरिहंत तपशूरा मां मुनिवर महंत,
शत्रुंजय गिरि गुणवंत।



सज्झाय

(१)

लज्जा मोरी राखो श्याम हरी
द्रौपदी राणी यूं[1] कर विनव कर दीन भाव धरी
मान रखो प्रीतम सुत पांचों बात पडी न खरी। लज्जा
इधर दुर्योधन, दुःशासन, मद की बुद्धि परी,
चीवर खेंचे मोरा सभा में दुष्ट धारी। लज्जा
भीष्म, द्रोण, कर्णादिक सर्वे, कौरव बीके[2] भरी,
पाण्डव प्रेम तजी सुन बैठा, जे हता जीव जुरी[3]। लज्जा
अरिहंत एक आधार हमारे, शियल सुगंध धरी,
पत राखो प्रभुजी इण वेळा, समकितवंत सुरी। लज्जा

---

१ जैसे २ भय ३ सगी, साथी।

तत खिण अष्टोत्तर शत चीवर, पूर्या प्रेम धरी,
शासनदेवी जयजय बोले, कुसुमनी वृष्टि करी। लज्जा
शियल प्रभावे द्रौपदी राणी, लज्जा लील वरी[1]
पांडव कुंत्यादिक सौ हरख्या, कहे धन्य धीर धरी। लज्जा
सत्य शील प्रतापे कृष्णादिक भवजल पार तरी,
जिन कहे शीयल धरे तस जनने नमिए पाय परी। लज्जा

(२)

जगत है स्वार्थ का साथी, समजले कौन है अपना।
ये काया काच का कुंवा नाहक तुं देखके फूलता,
पलक में फूट जावेगा, पत्ता ज्युं डाल से गिरता ॥१॥ जगत.
मनुष्य की ऐसी जिंदगानी, अभी तुं चेत अभिमानी,
जीवन का क्या भरोसा है, करी ले धर्म की करणी ॥२॥ जगत.
खजाना माल ने मंदिर, क्युं कहता मेरा मेरा तुं,
इहां सब छोड़ जाना है, न आवे अब साथ तेरा ॥३॥ जगत.
कुटुंब परिवार सुत दारा, सुपन सम देख जग सारा,
निकल जब हंस जावेगा उसी दिन है सभी न्यारा ॥४॥ जगत.
तेरे संसार सागर को, जपे जो नाम जिनवर को,
कहे खांति यही प्राणी, हटावे कर्म जंजीर को ॥५॥ जगत.

(३)

कौन किसी को मित्त, जगत में कौन किसी को मित्त,
मात तात और भ्रात स्वजन से कोई रहतन नचिंत ॥१॥ जगत.
सब ही अपने स्वारथ के हैं, परमारथ नहीं प्रीत,
स्वारथ विणसे सगो न होसी, मित्ता मन में चित ॥२॥ जगत.

---

१. लज्जा अथवा शील की लीला।

उठ चलेगा आप एकीलो, तु ही तु सुविदित
को नहीं तेरा तु नहि किसका, यह अनादि रीत ॥३॥ जगत
ताते एक भगवान भजन की राखो मन में चित
ज्ञानसार कहे काफी होयी गायो आतम गीत ॥४॥ जगत

(४)

अवसर बेर बेर नहि आवे, अवसर बेर बेर
जयु जाणे त्यु करले भलाई, जनम जनम सुख पावे ॥१॥
तन धन जोबन सब ही झूठो प्राण पलक में जावे ॥२॥
तन छूटे धन कौन काम को काहे कु कृपण कहावे ॥३॥
जाके दिल में साच बसत है ताकु झूठ न भावे ॥४॥
आनंदघन प्रभु चलत पथ में सिमर सिमर गुण गावे ॥५॥

(५)

जगमे न तेरा कोई नर देखहु निश्चय जोइ। जगमे
सुत मात तात अरु नारी, सहु स्वारथ के हितकारी,
बिन स्वारथ शत्रु सोइ ॥१॥ जगमे
तु फिरत महामद माता, विषयन संग मूरख राता,
निज अंग की सुध बुध खोइ ॥२॥ जगमे
घट ज्ञान कला नव जाकु पर निज मानत सुन ताकु
(मानत है ताकु) आखिर पछताचा होइ ॥३॥ जगमे
नवि अनुपम नरभव हारो, निज शुद्ध स्वरूप निहारो,
अंतर ममता मल धोइ ॥४॥ जगमे
प्रभु चिदानंद की वाणी तु धार अब मन प्राणी,
तु निश्चय जग प्राणी जिम सफल होत भव दोइ ॥५॥ जग मे

शुद्ध पच्चक्खाण से निश्चयरूपेण चारित्रधर्म प्रगट होता है जिससे पुराने कर्मों की निर्जरा होती है। फलतः अपूर्वकरण (आत्मा का अपूर्व वीर्योल्लास) गुणव्यक्त होता है जो केवलज्ञान का कारण होता है और केवलज्ञान से शाश्वत सुख का स्थानस्वरूप मोक्ष प्राप्त होता है। (आवश्यक निर्युक्ति)

प्रभात के समय—नमुक्कारसहिअं मुट्ठिसहिअ पच्चक्खाण
उग्गए सूरे नमुक्कारसहिअं मुट्ठिसहिअं पच्चक्खाइ[1]
चउव्विहं पि आहारं, असणं, पाणं, खाइमं, साइमं,
अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहि वत्तियागारेणं वोसिरइ[1]।

सांझ का पच्चक्खाण पाणहार

पाणहार दिवस चरिमं पच्चक्खाइ। अन्नत्थणा भोगेणं, सहसागारेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं, वोसिरइ।

चउविहार, तिविहार, दुविहार

दिवस चरिमं, पच्चक्खाइ, चउव्विहंपि आहारं, तिविहंपि आहारं, दुविहंपि आहारं, असणं, पाणं, खाइमं, साइमं, अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तिया गारेणं वोसिरइ।

१. पच्चक्खाण करनेवाला पाच्चक्खामि' और 'वोसिरामि' शब्द कहे।

चौबीस तीर्थंकरों के नामादि

क्रम	नाम	वर्ण	लछन	पिता का नाम	माता का नाम
१	ऋषभदेव	पीत	वृषभ	नाभिराज	मरुदेवी
२	अजितनाथ	,,	हाथी	जितशत्रु	विजया
३	संभवनाथ	,,	घोड़ा	जितारि	सेना
४	अभिनन्दनस्वामी	,,	वानर	संवर	सिद्धार्था
५	सुमतिनाथ	,,	क्रौंचपक्षी	मेघराज	मंगला
६	पद्मप्रभु	लाल	पद्म	श्रीधर	सुसीमा
७	सुपार्श्वनाथ	पीत	साथिया	प्रतिष्ठ	पृथ्वी
८	चन्द्रप्रभु	श्वेत	चन्द्र	महसेन	लक्ष्मणा
९	सुविधिनाथ	,,	मकर	सुग्रीव	रामा
१०	शीतलनाथ	पीत	वत्स	दृढरथ	नन्दा
११	श्रेयांसनाथ	,,	गैंडा	विष्णुराज	विष्णु
१२	वासुपूज्य	लाल	भैंसा	वसुपूज्य	जया
१३	विमलनाथ	पीत	सुअर	कृतवर्म	श्यामा
१४	अनन्तनाथ	,,	बाज	सिंहसेन	सुयशा
१५	धर्मनाथ	,,	वज्र	भानु	सुव्रता
१६	शांतिनाथ	,,	मृग	विश्वसेन	अचिरा
१७	कुंथुनाथ	पीत	बकरा	सुरराजा	श्रीराणी
१८	अरनाथ	,,	नंद्यावर्त	सुदर्शन	देवी राणी
१९	मल्लिनाथ	नील	कलश	कुंभराजा	प्रभावती
२०	मुनिसुव्रतस्वामी	कृष्ण	कछुआ	सुमित्र	पद्मा
२१	नमिनाथ	पीत	नीलकमल	विजय	वप्रा
२२	नेमनाथ	कृष्ण	शंख	समुद्रविजय	शिवा
२३	पार्श्वनाथ	नील	सर्प	अश्वसेन	वामा
२४	महावीरस्वामी	पीत	सिंह	सिद्धार्थ	त्रिशला

पंडित श्री वीरविजयजीकृत स्नात्रपूजा

(पहले कलश लेकर खड़े होना)

(काव्य–द्रुतविलम्बित)

सरसशान्तसुधारससागरं, शुचितरं गुणरत्नमहाकरं ।
भविपङ्कज बोध दिवाकरं, प्रतिदिनं प्रणमामि जिनेश्वरम्. . .॥१॥

दोहा

कुसुमाभरण उतारी ने, पडिमा धरिय विवेक,
मज्जनपीठे थापी ने करीये जल अभिषेक. . .॥२॥

(यहां प्रभु के दायें अंगूठे पर प्रक्षाल और अंगलूणा करके पूजा करने के पश्चात् थाली में कुसुमांजलि लेकर खड़े रहना ।)

गाथा–आर्यागीति

जिणजम्मसमये मेरुसिहरे, रयण–कणयकलसेहिं,
देवासुरेहिं एहविओ ते धन्ना जेहिं दिट्ठोसि. . .॥३॥

(जहां जहां 'कुसुमांजलि चढ़ाना' जाए, वहां प्रभु के अंगूठे पर कुसुमांजलि अर्पित करना ।)

कुसुमांजलि--ढाल

निर्मलजल कलशे न्हवरावे, वस्त्र अमूल्क-अग धरावे,
कुसुमाजलि मेलो आदि जिणदा, सिद्धस्वरूपी अग पखाली,
आतम निर्मल होइ सुकुमाली कुसुमा ॥४॥
(प्रभु के दक्षिण अगूठे पर कुसुमाजलि चढाना)

गाथा–आर्यागीति

मचकुदचपमालइ, कमलाइ पुष्फपचवण्णाइ,
जगनाहन्हवण समये, देवा कुसुमाजलि दिति ॥५॥
नमोऽर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्य ।

कुसुमांजलि--ढाल

रयणसिंहासन जिन थापीजे, कुसुमाजलि प्रभु चरणे दीजे,
कुसुमाजलि मेलो शांति जिणदा ॥६॥

दोहा

जिण तिहु कालय सिद्धनी, पडिमा गुण भडार,
तसु चरणे कुसुमाजलि, भविक दुरित हरनार ॥७॥
नमोऽर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्वसाधुभ्य ।

कुसुमांजलि-ढाल

कृष्णागरु वर धूप धरीजे, सुगंधवर कुसुमांजलि दीजे,
कुसुमांजलि मेलो नेमि जिणंदा...॥८॥

गाथा–आर्यागीति

जसु परिमल बल दहदिसिं, महुकर झंकार सद्संगीया,
जिण चलणोवरि मुक्का, सुरनर कुसुमांजलि सिद्धा ॥९॥
नमोऽर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्वसाधुभ्यः ।

कुसुमांजलि ढाल

पास जिणेसर जग जयकारी, जलथलफूल उदक करधारी,
कुसुमांजलि मेलो पार्श्व जिणंदा...॥१०॥

दोहा

मूके कुसुमांलजलि सुरा, वीर चरण सुकुमाल,
ते कुसुमांजलि भविकनां पाप हरे त्रण काल...॥११॥
नमोऽर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्वसाधुभ्यः।

कुसुमांजलि-ढाल

विविध कुसुमवर जाति गहेवी, जिण चरणे पणमत ठवेवी,
कुसुमाजलि मेलो वीर जिणदा ॥१२॥

वस्तु-छंद

न्हवणकाले न्हवणकाले देवदाणव समुच्चिय
कुसुमाजलि तहि सठविय पसरत दिसि परिमय सुगधिय
जिणपयकमले निवडेइ विग्घहर जस नाममतो,
अनत चउवीस जिन, वासव मलीय असेस,
सा कुसुमाजलि सुहकरी चउविह सघ विशेष
कुसुमाजलि मेलो चउवीस जिणदा ॥१३॥

नमोऽर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्वसाधुभ्य ।

कुसुमांजलि-ढाल

अनत चउवीसी जिनजी जुहार, वर्तमान चउवीसी सभार
कुसुमाजलि मेलो चउवीस जिणदा ॥१४॥

दोहा

महाविदेहे सप्रति विहरमान जिन वीस,
भक्ति भरे ते पूजिया करो सघ सुजगीश ॥१५॥

नमोऽर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्य ।

कुसुमांजलि-ढाल

अपच्छरमंडली गीत उच्चारा, श्री शुभवीर विजय जयकारा.

कुसुमांजलि मेलो सर्वजिणंदा. . .॥१६॥

(स्नात्र पढ़ानेवाला प्रभु के दाये अंगूठे पर कुसुमांजलि रखे।)

कुसुमांजलि ढाल संपूर्ण

(तत्पश्चात् दोहे बोलते बोलते तीन प्रदक्षिणा देकर)

'इच्छामि खमासमणो वंदिउं जावणिज्जाए निसीहिआए मत्थेण वंदामि' यह सूत्र तीन वार बोलते हुए तीन खमासमण देकर जगचिंतामणि चैत्य-वंदन जयवीयराय सूत्र तक करना।



प्रदक्षिणा के दोहे

(१)

काल अनादि अनंतथी, भवभ्रमणनो नहि पार,
ते भवभ्रमण निवारवा, प्रदक्षिणा दउं त्रण वार।
भमतीमां भमता थका, भवभावठ[1] दूर पलाय.
दर्शनज्ञान चारित्र रुप प्रदक्षिणा त्रण देवाय॥

१. भव भ्रमण,

(२)

जन्म मरणादि भयटले, मीजे जो दर्शन काज
रत्नत्रय प्राप्ति भणी दर्शन करो जिन राज।
ज्ञानवड् मयारमा, ज्ञान परम सुख हेत
ज्ञान विना जग जीवडा न लहे तत्त्व सकेंत ॥

(३)

चय[1] ते सचय कर्मनो खाली करे वली[2] जेह[3],
चारित्र निरुक्ते कही वंदो ते गुण गेह।
दर्शन ज्ञान चारित्र ए रत्नत्रयी शिव द्वार,
त्रण प्रदक्षिणा ते कारणे भवदुःख भजनहार ॥

(इसके बाद मुखपर रूमाल बांधकर हाथ को धूप के ऊपर करके इसमे कलश लेकर खडे रहना।)

दोहे

सयल जिणेसर पाय नमी, कल्याणक विधि ताम,
वर्णवता सुणता थका, सघनो पुगे आश ॥१॥

ढाल

समकित गुणठाणे परिणम्या, वली व्रतधार सयम सुख रम्या,
वीस स्थानक विधिए तप करी, एसी भावनया दिलमा धरी ॥२॥
जो होवे मुज शक्ति इसी, सवि जीव करुं शासन रसी,
शुचिरस ढलते तिहा बाधता, तीर्थंकर नाम निकाचता ॥३॥

१ चारित्र र 'च', २ और भी, ३ जो।

सरागथी संयम आदरी, वच्चमां एकदेवनो भवकरी,
चवी पन्नर क्षेत्रे अवतरी, मध्यखंडे पण राजवी कुले ॥४॥

पटराणी कूखे गुणनीलो जेम मानसरोवर हंसनो,
सुख शय्याये रजनी शेषे, ऊतरतां चौद सुपन देखे ॥५॥

ढाल १४ स्वप्नों की

पहेले गजवर दीठो, बीजे वृषभ पइट्ठो;
त्रीजे केसरी सिंह, चोथे लक्ष्मी अबीह[1] ॥१॥

पांचमे फूलनी माला, छट्ठे चन्द्र विशाला।
रवि रातो[2] ध्वज म्होटो, पूरण कलश नहि छोटो ॥२॥

दसमे पद्म सरोवर, अगियारमे रत्नाकर।
भुवन विमान रत्नगंजी अग्निशिखा धूमवर्जी ॥३॥

स्वप्न लही जइ राय ने भाखे, राजा अर्थ प्रकाशे।
पुत्र तीर्थंकर त्रिभुवन नमशे, सकल मनोरथ फलशे ॥४॥

---

१. भययुक्त; २. लाल रंग का।

वस्तु-छंद

अवधि नाणे अवधि नाणे, उपन्या जिन राज,
जगत जस परमाणुआ, विस्तर्या विश्वजतु सुखकार,
मिथ्यात्व तारा निर्बला, धर्म उदय परभात सुदर,
माता पण आनदीया, जागती धर्म विधान,
जाणती जगतिलक समो, होशे पुत्र प्रधान ॥१॥

दोहा

शुभ लग्ने जिन जनमिया, नारकीमा सुखज्योत,
सुख पाम्या त्रिभुवन जना, हुओ जगत उद्योत ॥१॥

ढाल—कडखानी[1] देशी

साभली कलश जिन महोत्सवनो इहा,
छप्पन कुमरी दिशीविदिशि आवे तिहा,
माय सुत नमीय आणद अधिको धरे,
अष्ट सवर्त वायुथी कचरो हरे ॥१॥

वृष्टिगधोदके अष्टकुमरी करे,
अष्ट कलशा भरी अष्ट दपण धरे,
अष्ट चामर धरे अष्ट पखा ग्रही,
चार रक्षा करी चार दीपक ग्रही ॥२॥

---

१ एक राग का नाम।

घर करी केलना मायसुत लावती,
करणशुचीकर्म जलकलशे न्हवरावती,
कुसुम पूजी अलंकार पहेरावती,
राखडी बांधी जइ, शयन पधरावती ॥३॥

नमीय कहे माय तुज बाल लीलावती,
मेरु रवि चन्द्र लगे जीवजो जगपती,
स्वामी गुण गावती; निज घर जावती,
तेण समे इन्द्रसिंहासन कंपती ॥४॥

ढाल—एकवीशानी देशी

जिन जनम्याजी जिण वेला जननी घरे
तिण वेलाजी इन्द्रसिहासन थरहरे,

दाहिणोत्तर जी जोता जिन जनमें यदा,
दिशि नायक जी सोहम इशान बिहु तदा ॥१॥

त्रोटक-छंद

तदाचिंते इन्द्र मनमा, कोण अवसर ए बन्यो,
जिन जन्म अवधिनाणे जानी, हर्ष आनंद उपन्यो ॥१॥

सुघोष आदे घंटा नादे घोषणा सुर में करे, (यहाँ घंटा बजाना)
सवि देवी देवा जन्म महोत्सवे आवजो सूर गिरिवरे ॥२॥

ढाल

एम साभलीजी, सुरवर कोडी आवी मले,
जन्म महोत्सवजी, करवा मेरु उपर चले,
सोहमपतिजी, बहु परिवारे आवीया,
माय जिननेजी, वादी प्रभु ने वधावीया ॥३॥
(यहा प्रभु की चावल से पूजा करना)

त्रोटक

वधावी बोले हे रत्नकुक्षीधारिणी ! तुज सुत तणो,
हु शक्र सोहम नामे करशु, जन्म महोत्सव अति घणो,
एम कही जिन प्रतिबिंब थापी, पचरूपे प्रभु ग्रही,
देवदेवी नाचे हर्ष साथे सुरगिरि आव्या वही ॥४॥

ढाल

मेरु उपरजी पाडुक वन में चिहु दिशे,
शिला उपरजी सिंहासन मन उल्लसे,
तिहा बेसीजी शक्रे जिन खोले धर्या,
हरि त्रेसठजी, बीजा तिहा आवी मल्या ॥५॥

त्रोटक

मल्या चोसठ सुरपति तिहा, करे कलश अड जातिना,
मागधादि जल तीर्थ औषधि, धूपवली बहु भातिना,

अच्युत पतिए हुकम कीधो, सांभलो देवो सवे,
खीरजलधि गंगानीर लावो, झटिति जिन महोत्सवे ॥६॥

ढाल--विवाहलानी देशी

सुरसांभली ने संचरीया, मागध वरदाये चलीया,
पद्मद्रह[1] गंगा आवे, निर्मल जल कलशा भरावे ॥१॥

तीरथ जल औषध लेता, वली खीर समुद्रे जाता,
जलकलशा बहुल भरावे, फूल चंगेरी थाला लावे ॥२॥

सिंहासन चामर धारी, धूपधाणां रकेबी सारी,
सिद्धान्ते भाख्या जेह, उपकरण मिलावे तेह ॥३॥

ते देवा सुरगिरि आवे, प्रभु देखी आनंद पावे,
कलशादिक सहु तिहां ठावे, भक्ते प्रभुना गुण गावे ॥४॥

ढाल--राग धनाश्री

आतम भक्ति मल्या केइ देवा, केता मित्तनु जाइ,
नारी प्रेर्या वली निज कुलवट, धर्मी धर्म सखाइ,
जोइस व्यंतर भुवनपतिना, वैमानिक सुर आवे,
अच्युत पति हुकमे धरी कलशा, अरिहाने नवरावे. आतम...॥१॥
अडजाति कलशा प्रत्येके आठ आठ सहस प्रमाणो,
चउसठ सहस हुआ अभिषेके. अढीसें गुणाकरी जाणो,

---

१. पद्मसरोवर

साठ लाख उपर एक कोडि, कलशानो अधिकार,
बासठ इन्द्र तणा तिहा बामठ, लोकपालना चार आतम ॥२॥

चन्द्रनी पक्ति छाम्ठ छासठ, रवि श्रेणी नर लोको,
गुरु स्थानक सुरकेरो एक ज, सामानिकनो एको,
सोहमपति इशानपतिनी, इन्द्राणीना सोल,
असुरना दश इन्द्राणी, नागनी बार करे कल्लोल आतम ॥३॥

ज्योतिष व्यतर इन्द्रनी चउ चउ, पपदा त्रणनो एको,
कटकपति अगरक्षक केरो एक एक सुविवेको,
परचूरण सुरनो एक छेल्लो, ए अढीसें अभिषेको,
इशान इन्द्र कहे मुज आपो, प्रभुने क्षण अतिरेको आतम ॥४॥

तवतम खोले ठवी अरिहाने सोहमपति मनरगे,
वृषभरूप करी श्रृगजले भरी, न्हवण करे प्रभु अगे
पुष्पादिक पूजीने छाटे करी केसर रग रोले
मगलदीवो आरती करता सुरवर जय जय बोले आतम ॥५॥

भेरी भूगल ताल बजावत वलीया जिन कर धारी
जननी घर माताने सोपी एणी पेरे वचन उच्चारी,
पुत्र तुमारो स्वामी हमारो अम सेवक आधार
पच धावी रभादिक थापी प्रभु खेलावणहार आतम ॥६॥

बत्रीस कोडी कनक मणि माणिक वस्त्रनी वृष्टि करावे,
पूरण हर्ष करेवा कारण द्वीप नदीसर जावे,
करीय अट्ठाइ उत्सव देवा निज निज कल्प सधावे
दीक्षा केवल ने अभिलाषे नित नित जिन गुण गावे आतम ॥७॥

तपगच्छ–इमर सिंहसूरीश्वर केरा शिष्य वडेरा
सत्यविजय पन्यासतणे पद कपूर विजय गभीरा

खिमाविजय तस सुजस विजयना श्री शुभ विजय सवाया,
पंडित वीर विजय तस शिष्ये, जिन जन्म महोत्सव गाया, हालम. ॥८॥

उत्कृष्टा एकसो ने सित्तेर, संप्रति विचरे वीस,
अतीत अनागत काले अनंता, तीर्थंकर जगदीश,
साधारण ए कलश जे गावे श्री शुभ वीर सवाई,
मंगल लीला सुखभर पावे घर घर हर्ष वधाई. आनम... ॥९॥

(प्रभुजी की अक्षत लेकर पूजा करना। कलश द्वारा अभिषेक करके पंचामृत प्रक्षाल करना। उसके बाद चंदन पूजा करके पुष्प चढ़ाना, नमक का वारना करके आरती तथा मंगल दीवा उतारना। शांति कलश करना।)



श्री आदिजिणंदर्ना आरती

जय जय आरती आदि जिणंदा, नाभिराया मरुदेवीको नंदा ॥१॥ जय
पहेली आरती पूजा कीजे, नरभव पामी ल्हावो लीजे ॥२॥ जय
दूसरी आरती दीनदयाला, धूलेवा मंडपमां जग अजवाला ॥३॥ जय
तीसरी आरती त्रिभुवन देवा, सुरनर इन्द्र करे तोरी सेवा ॥४॥ जय
चोथी आरती चउगति चूरे, मनवंछित फल शिवसुख पूरे ॥५॥ जय
पांचमी आरती पुण्य उपाया, मूलचंदे ऋषभ गुण गाया ॥६॥ जय

मंगल दीवो

दीवो रे दीवो प्रभु मंगलिक दीवो,
आरती उतारी ने बहु चिरंजीवो ॥१॥ दीवो
सोहामणु घेर पर्व दीवाली, अंबर खेले अमरावाली ॥२॥ दीवो
दीपाल भणे एणे कुल अजुवाली, भावे भगते विघ्न निवारी ॥३॥ दीवो
भीपाल भणे एणे ए कलिकाले, आरती उतारी राजाकुमारपाले ॥४॥ दीवो
अम घेर मंगलिक तुम घेर मंगलिक,
मंगलिक चतुर्विध संघने होतो ॥५॥ दीवो

शांति कलश

'नमोऽर्हत' कहकर तीनचार नवकार, उवसग्गहर कहन के बाद बृहत्शांति पढना।

इति शुभम्

